CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
जयति शिवा-शिव जानकि-राम । जय रघुनन्दन राधेश्याम ॥
रघुपति राघव राजा राम, पतितपावन सीताराम ।
जय जय दुर्गा जय मा तारा, जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय, सत् चित आनँद भूमा जय जय ।
जय जय विश्वरूप हरि जय, जय अखिलात्मन् जगमय जय ।
जय विराट जय जगत्पते, गौरीपति जय रमापते ॥

वार्षिक मूल्य—भारतमें ४=) विदेशमें ६) एकप्रतिका मूल्य ।=)

Edited by Hanuman Prasad Poddar, Printed and Published by Ghanshyamdas at the Gita Press, Gorakhpur.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'कल्याण'के प्रेमियोंसे सप्रेम अनुरोध

यह प्रायः सभी जानते हैं कि 'कल्याण'के ऐसे कोई एजेण्ट नहीं हैं, जिनको 'कल्याण' के ग्राहक बनानेके लिये कुछ भी कमीशन मिलता हो। तथापि बहुत सन्तोषकी बात है कि 'कल्याण' के बहुतेरे प्रेमी एजेण्ट हैं जो बिना किसी स्वार्थके सदा-सर्वदा 'कल्याण'के प्रचारमें लगे रहते हैं। कमीशन तो अधिकांश पत्र देते ही हैं, कई ग्राहक बनानेवाले महानुभावोंके नाम छापते हैं, बल्कि कुछमें तो उनके चित्र छापने तकका विज्ञापन दिया जाता है। परन्तु 'कल्याण'के प्रेमी प्रचारकोंको न कमीशन मिलता है, न उनके नाम छपते हैं और न उनके फोटो ही निकलते हैं। हालमें एक सज्जनने हमें सुझाया था कि 'यदि ग्राहक बनानेवालोंके नाम छापे जायं तो उन्हें विशेष उत्साह होगा,' बात ठीक है, इस बातको हम लोग खूब समझते हैं, परन्तु हमारी इच्छा है कि 'कल्याण'के प्रेमी पाठक निष्काम कर्मका महत्त्व समझें। बिना किसी प्रकारके प्रयोजनके, केवल ईश्वरप्रीत्यर्थ ही कल्याणकी सेवा करें। जो सज्जन अपने मनमें सच्चे भावसे यह समझते हैं कि 'कल्याण'के द्वारा ईश्वर-सम्बन्धी कुछ भी सद्भावोंका प्रचार हो रहा है, केवल उन्हीं सज्जनोंको इसके प्रचारके लिये चेष्टा करनी चाहिये और ऐसा करना उनका धर्म भी है। हमारी भी उन सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे केवल ईश्वरप्रीत्यर्थ ही 'कल्याण'के प्रचारमें हमारी सहायता करते रहें। इस वर्ष 'गीतांक' बहुत बड़ा निकलनेके कारण 'कल्याण'के संचालकोंको बहुत धन लगाना पड़ा है। 'गीतांक' की देश-विदेशके सभी मतोंके बड़े बड़े विद्वानों और पत्रोंने एक स्वरसे प्रशंसा की है और ग्राहक भी काफी बढ़े हैं, परन्तु आर्थिक स्थितिको देखते अभी और भी ग्राहक बढ़ने चाहिये। इस वर्ष 'कल्याण'को सिर्फ दो हजार ग्राहक और बनाने हैं। कल्याणके प्रेमी पाठकपाठिकागण चाहें तो सहजहीमें एक महीनेके अन्दर दो हजार ग्राहक बना सकते हैं। दो हजार ग्राहक और बन जानेपर हम इस साल ग्राहक बनाना बन्द कर देंगे। अतएव कल्याणके प्रेमी सभी सज्जनों और देवियोंसे सप्रेम अनुरोध है कि वे उद्योग करके भरसक इसी महीनेमें दो हजार ग्राहक और बना दें। यदि कल्याण-के हजार दो हजार ग्राहक भी उद्योग करें तो सहजमें दो हजार नये ग्राहक बन सकते हैं। इसके सिवा–

–तीसरे वर्षकी फाइल

करीब चौदह सौ प्रतियां हमारे पास बेचनेके लिये बची हैं। गत वर्षका 'भक्तांक' अलग नहीं रहा है। ४=) में बिना जिल्द और ४॥=) में सजिल्द पूरी फाइल मिल सकती है, जिसमें भक्तांक शामिल है। 'कल्याण'के दो हजार ग्राहक बन जायं और ये फाइलें बिक जायं तो इस वर्ष कल्याण-पर जितने रुपये लगेंगे, उनमेंसे बहुत कुछ वसूल हो जायंगे। थोड़ा घाटा रहेगा सो सह लिया जायगा। प्रेमियोंको इस कार्यमें सहयोग देना चाहिये। यह स्मरण रखना चाहिये कि 'कल्याण' का संग्रह रखना बहुत ही लाभप्रद है। इसमें ऐसी सामग्री है जो कभी पुरानी नहीं हो सकती और पढ़नेवालोंको सदा सन्मार्गपर लगाती रहती है। जिनका ऐसा विश्वास हो, उन्हींसे इसका प्रचार करनेके लिये निवेदन किया जाता है। आशा है, हमारे निवेदनपर 'कल्याण' के प्रेमी पाठक-पाठिकागण अवश्य ध्यान देंगे।

'कल्याण'-कार्यालय
गोरखपुर (यू. पी.)

संचालकोंकी ओरसे
हनुमानप्रसाद पोद्दार 'सम्पादक'
के जय सच्चिदानन्द।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
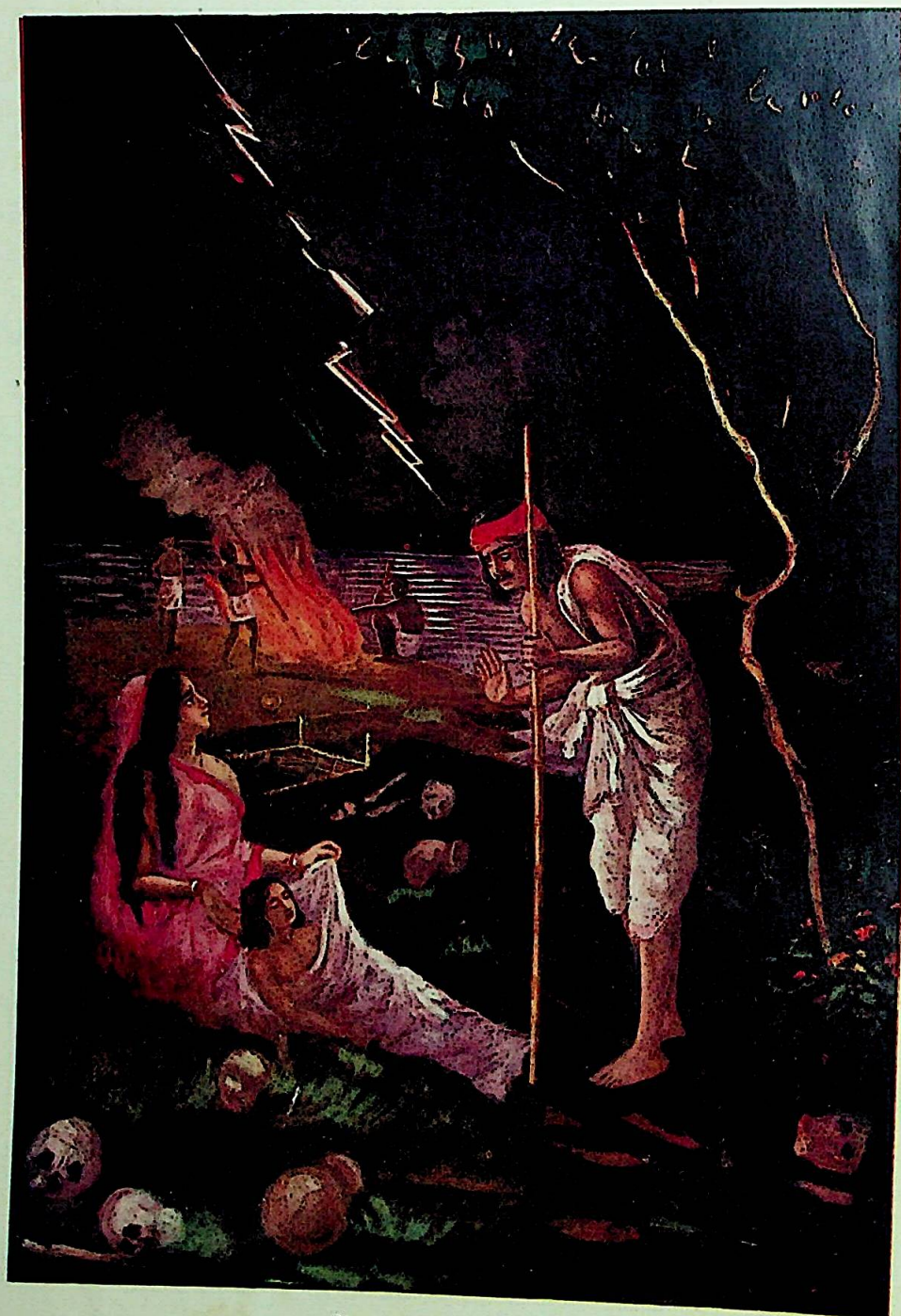
श्मशानमें सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र।

Gaya Art Press, Calcutta.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
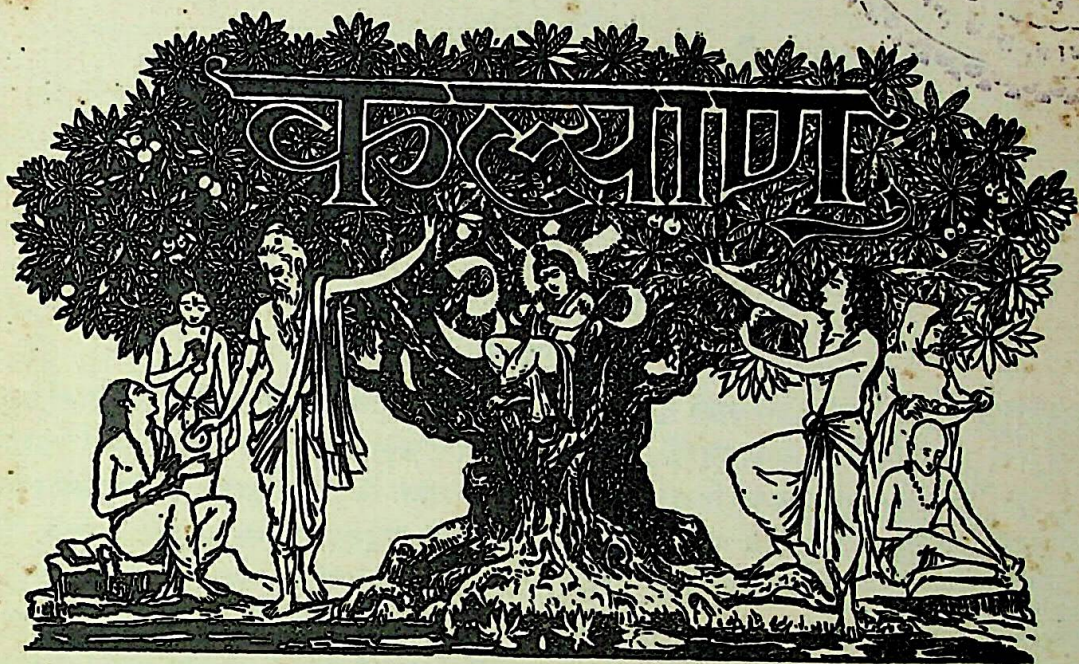
यस्य स्वादुफलानि भोक्तुमभितो लालायिताः साधवः ,
भ्राम्यन्ति ह्यनिशं विविक्तमतयः सन्तो महान्तो मुदा ।
भक्तिज्ञानविरागयोगफलवान् सर्वार्थसिद्धिप्रदः ,
सोऽयं प्राणिसुखावहो विजयते कल्याणकल्पद्रुमः ॥

भाग ४ } माघ कृष्ण ११ संवत् १९८६ { संख्या ७

अब न नसैहौं

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं ।

राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौं ॥
पायो नाम चारु-चिन्तामणि, उर करते न खसैहौं ।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कञ्चनहि कसैहौं ॥
परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं ।
मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं ॥

—गो० तुलसीदासजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
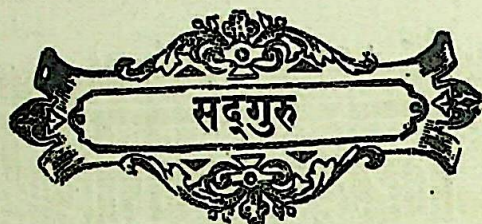
सद्गुरु

(लेखक--एक.........)

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
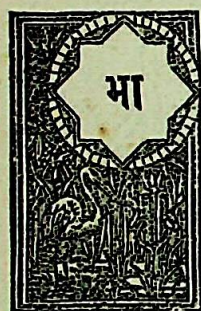
रतीय साधनामें गुरुशरणागति सर्वप्रथम है । सद्गुरुकी कृपा बिना साधनाका यथार्थ रहस्य समझमें नहीं आ सकता । केवल शास्त्रों और तर्कोंसे लक्ष्यतक नहीं पहुंचा जा सकता। अनुभवी सद्गुरु साधन-पथके अन्तराय, उनसे बचनेके उपाय और साधनमार्गका उपादेय पाथेय बतलाकर शिष्यको लक्ष्यतक अनायास ही पहुंचा देते हैं। इसीलिये श्रुतियोंसे लेकर वर्तमान समयके सन्तोंकी वाणीतक, सभीमें एक स्वरसे सद्गुरुकी शरणमें उपस्थित होकर अपने अधिकारके अनुसार उनसे उपदेश प्राप्तकर तदनुकूल आचरण करनेका आदेश दिया है। सभी सन्तोंने मुक्तकण्ठसे गुरु-महिमाका गान किया है। यहां तक कि गुरु और गोविन्द दोनोंके एक साथ मिलनेपर पहले गुरुको ही प्रणाम करनेको विधि बतलायी गयी है, क्योंकि गुरुकी कृपासे ही गोविन्दके दर्शन प्राप्त करनेका सौभाग्य मिलता है। गुरुकी महिमा अवर्णनीय है। वे पुरुष धन्य हैं—बड़े ही सौभाग्यवान् हैं जिन्हें सद्गुरु मिले हैं और जिन्होंने अपना जीवन उनकी आज्ञा-पालनके लिये सहर्ष उत्सर्ग कर दिया है।

वास्तवमें यथार्थ पारमार्थिक साधन सद्गुरुकी सन्निधिमें ही सम्भव है। कृपालु गुरुके कर्णधार हुए बिना साधन-तरणीका विषय-समुद्रकी नभोव्यापिनी उत्ताल तरङ्गोंसे बचकर उस पारतक पहुंच जाना नितान्त असम्भव है। इसलिये प्रत्येक साधकको सद्गुरुकी खोज करनी चाहिये और ईश्वरसे आर्त्तभावसे प्रार्थना करनी चाहिये कि जिसमें ईश्वरानुग्रहसे सद्गुरुकी प्राप्ति हो जाय। क्योंकि वास्तविक सन्त-महात्मा भगवत्कृपासे ही प्राप्त होते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यदि सद्गुरुप्राप्तिकी अति तीव्र इच्छा हो तो स्वयं परमात्मा सद्गुरुरूपसे प्रकट होकर मुमुक्षु साधकको साधनपथ प्रदर्शितकर कृतार्थ कर सकते हैं। खोज मनसे होनी चाहिये और होनी चाहिये केवल तत्त्वज्ञ पुरुषको प्राप्तकर स्वयं तत्त्व समझनेके पवित्र उद्देश्यसे ; परीक्षा या कौतूहलके लिये नहीं, क्योंकि सच्चे सन्त न तो परीक्षा दिया करते हैं, न परीक्षामें उत्तीर्ण होकर जगत्में मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करने या प्रतिभाशाली व्यक्तियोंपर प्रभाव डालकर उन्हें शिष्य बनानेकी ही इच्छा रखते हैं। जो श्रद्धासे उनकी शरण होता है, उसीके सामने, वे उसके अधिकारानुसार रहस्य प्रकट किया करते हैं। गोपनीय रहस्य अतपस्क, अश्रद्धालु, तार्किक, दोषान्वेषणकारी, नास्तिक और कौतूहलप्रिय मनुष्यके सम्मुख न तो प्रकट करनेमें कोई लाभ है और न सन्त-सुधीजन प्रकट किया ही करते हैं। भगवान्ने स्वयं श्रीमुखसे अधिकारकी मीमांसा कर दी है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥

यह जो परम गुप्त रहस्य तुझ अत्यन्त प्रिय मित्रको मैंने बतलाया है इसे तपरहित, भक्ति-रहित, सुनना न चाहनेवाले और मेरी (भगवान्) की निन्दा करनेवाले लोगोंको भूलकर भी न बतलाना। इससे यह सिद्ध होता है कि यथार्थ सन्त-महात्मा पुरुष अधिकारीकी परीक्षा किये बिना गुह्य रहस्य प्रकट नहीं करते। अपनेको साधारण मनुष्य बतलाकर ही पिण्ड छुड़ा लिया करते हैं। लोग उन्हें असाधारण मानें, यह तो उनकी चाह होती नहीं, और असली बात बतलानेका वे अधिकारी पाते नहीं इसलिये स्वयं अनजानसे बन जाते हैं, और वास्तवमें यह सत्य ही है कि ईश्वरका यथार्थ तथ्य ईश्वरके अतिरिक्त दूसरा जानता भी कौन है? अतएव तीव्र मुमुक्षा और श्रद्धाको साथ रखकर सद्गुरुका अन्वेषण करनेसे सद्गुरुकी प्राप्ति अवश्य हो सकती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। संन्यासियों और गृहस्थोंमें आज भी अनेक सच्चे साधक और महात्मा हैं। सच्चे ऋषियोंका आज भी अभाव नहीं है। परन्तु वे प्रायः अप्रकट रहते हैं। प्रकट रहनेवालोंको पहचानना भी बड़ा कठिन होता है क्योंकि उनका बाहरी वेष तो कोई विलक्षण होता नहीं, जिससे लोग कुछ अनुमान कर सकें।

यह सब होते हुए भी, श्रद्धाको मनमें पूरा स्थान देते हुए भी, आजकलके समयमें बहुत ही सावधानीकी आवश्यकता है। आज अवतारों, जगत्-गुरुओं, विश्वोपदेशकों (World-teachers) सद्गुरुओं, ज्ञानियों, योगिराजों और भक्तोंकी देशमें हाट लग रही है। ये सब दुर्लभ पद मोहवश आज बहुत ही सस्ते हो रहे हैं। ऐसे कई व्यक्तियोंके नाम तो यह लेखक ही जानता है, जिनकी खुल्लमखुल्ला अवतार कहकर पूजा की जाती है और वे उसको स्वीकार करते हैं। पता नहीं, ईश्वरके इतने अवतार एक ही साथ देशमें कैसे हो गये? आश्चर्य तो यह कि एक अवतार दूसरे अवतारको माननेके लिये तैयार नहीं है। ऐसी स्थितिमें ये अवतार वास्तवमें क्या वस्तु हैं? इस बातको प्रत्येक विचारशील पुरुष सोच सकते हैं। गुरु तो गाँव गाँव और गली गलीमें मिल सकते हैं, सब कुछ गुरुचरणोंमें अर्पण करनेमात्रसे ही ईश्वर-प्राप्तिकी गैरण्टी देनेवाले गुरुओंकी कमी नहीं है, ऐसे हजारों नहीं, लाखों गुरु होंगे। परन्तु दुःख है कि इन गुरुओंकी जमातसे उद्धार शायद ही किसीका होता है। सद्गुरु तो वह है जो शिष्यके मनका अनन्त कोटि-जन्म-सञ्चित अज्ञान हरण करता है, जो शिष्यको सन्मार्गपर लगाता है, जो उसके हृदयमें परमात्माके-प्रति सच्चे प्रेमके भावोंका विकास करवा देता है। जो अपनी नहीं, परन्तु परमात्माकी—सर्वव्यापी सर्वभूतस्थित परमात्माकी पूजाका पाठ पढ़ाता है, जो शिष्यको यथार्थमें दैवीसम्पत्तिके गुणोंसे विभूषित देखना चाहता है, जो निरन्तर इस प्रयत्नमें लगा रहता है कि शिष्य किसी प्रकारसे भी कुमार्गमें न जाने पावे, जो पद पदपर उसे सावधान करता है और कुपथसे बचाता है, जो त्याग और सदाचार सिखाता है, जो निर्भय होकर विश्वरूप भगवान्की सेवा करना बतलाता है, जो स्वयं अमानी होकर शिष्यको मानरहित होना और स्वयं काम, क्रोध, लोभसे छूटकर शिष्यको उनसे बचना सिखाता है एवं जो अपने बाहर और भीतरके सभी आचरणोंको ऐसा स्वाभाविक पवित्र रखता है, जिसका अनुकरणकर शिष्यका हृदय पवित्रतम बन जाता है। वास्तवमें ऐसा ही पुरुष परमात्माको पा सकता है और दूसरोंको भी परमात्माकी प्राप्तिके पथपर आरूढ़ करवा सकता है। भगवान्ने कहा है—

निर्मानमोहा जितसंगदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥
(गीता १५ । ४)

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥
(गीता ५ । १७)

जिनके हृदयमें मान-मोह नहीं है, जिन्होंने आसक्तिके दोषपर विजय प्राप्त कर ली है, जो नित्य परमात्माके स्वरूपमें स्थित रहते हैं, जिनकी लौकिक-पारलौकिक कामनाएं भलीभांति नष्ट हो गयी हैं, जो सुख-दुःख-नामक द्वन्द्वोंसे सर्वथा छूट गये हैं, ऐसे बुद्धिमान् पुरुष ही उस अव्यय परमपदको प्राप्त होते हैं।

जिनकी बुद्धि परमात्मरूप हो गयी है, जिनका मन परमात्मरूप है, जिनकी निष्ठा केवल परमात्मामें ही है, जो केवल परमात्माके ही परायण हैं, ऐसे ज्ञानके द्वारा पापरहित हुए पुरुष ही अपुनरावृत्ति-रूप परमगतिको प्राप्त होते हैं।

भगवान्ने इसीप्रकारके तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके शरणमें जाकर प्रणिपात, सेवा और निष्कपट प्रश्नों-द्वारा ज्ञान प्राप्त करनेके लिये उपदेश दिया है।

इसके विपरीत जो कुछ भी नहीं जाननेपर भी 'सब जाननेवाले' बननेका दम भरते हैं, जो 'सोनेकी चिड़िया' फांसनेके लिये सदा-सर्वदा ही मिथ्या मधुर भाषण और व्यवहारका जाल बिछाये रखते हैं, जो पूजा करानेके लिये पैर फैलाते तनिक भी संकुचित नहीं होते, जो धन लेकर कानमें मन्त्र फ'कते और ईश्वर-प्राप्तिकी गैरण्टी देते हैं, बहुत ऊंचे आकाशमें उड़नेपर भी जैसे बाजकी दृष्टि सड़े मांसपर होती है इसी तरह जो बहुत ऊंची ऊंची वेदान्त और भक्तिकी बातें बनाते रहनेपर भी अपनी पैनी नजर भक्तोंके धनपर रखते हैं, जो पाप-दृष्टिसे शिष्यकी माता, बहिन या स्त्रीकी ओर घूरते हैं, जो युवा [illegible]ओंके कानोंमें मन्त्र देते, उनसे एकान्तमें मिलते और उनसे पूजा करवाते हैं, जो मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण बतलाते हैं, जो चमत्कार दिखलाते हैं, जो अपने विरुद्ध मतवादियों और स्वार्थमें बाधा पहुंचानेवालोंको धमकाने मारने या उनका अनिष्ट करनेका उपदेश करते हैं, और जो सत्ताके लिये आचार्यका पद ग्रहण किये रहते हैं; ऐसे गुरुओंसे तो यथासाध्य बचना ही चाहिये। ऐसे लोग गुरुके वेषमें शिष्य और संसारको धोखा देनेवाले प्रायः पाखण्डी ही होते हैं, स्वयं नरकगामी होते और अनुयायियोंके लिये नरकका पथ साफ करते हैं। यों तो बाहरसे अच्छे बने हुए दम्भी मनुष्यकी भी सहजमें कोई पहचान नहीं हो सकती, दम्भी चालाक आदमी जीवनभर दम्भ रचकर लोगोंको धोखेमें डाले रख सकता है, परन्तु यदि उसके पास रहने और उसकी बात मानने सुननेसे अपने अन्दर कोई बुरा भाव नहीं पैदा हो तो उससे इतना अनिष्ट नहीं हो सकता; यद्यपि उसके सङ्गसे भी गिरनेका भय रहता है। सन्मार्ग मिलना तो असम्भवसा ही है परन्तु यदि कोई मनुष्य सच्ची ईश्वर-प्राप्तिकी लालसासे ऐसे मनुष्यके फन्देमें फंस जाय, जो दम्भी हो और जिसके आचरण बाहरसे पवित्र हों और जिसके सङ्गसे प्रकाश्यमें कोई बुराई न उत्पन्न होती हो तो परमात्मा उस सच्चे मनुष्यकी तबतक रक्षा करता है, जबतक कि वह आसक्तिके वश होकर दम्भमें सम्मिलित नहीं हो जाता।

जो लोग अपनी पूजा करवाते हैं, पूजा करनेको कहते हैं, पूजा करनेवालोंको अच्छा और न करनेवालोंको बुरा समझते हैं, अपनी पूजाके लिये उपदेश करते हैं, 'गोविन्दसे गुरु' या 'रामसे रामके दास' बड़ेका उदाहरण देकर अपनेको भगवान्से बड़ा बतलाकर शिष्योंकी भक्ति खरीदना चाहते हैं, उनसे अवश्य सावधान रहना उचित है। सद्गुरु वास्तवमें अपनी पूजा नहीं चाहते। अवश्य ही उनके उच्च चरित्र, महान् त्याग और विलक्षण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सद्गुणोंको देखकर लोगोंके मनमें उनके प्रति स्वयमेव पूज्यभाव उत्पन्न होता है, उनकी पूजा या भक्ति साधनमें सहायक होती है, शिष्य उनसे उपकृत होकर, उनके उपदेशोंसे और चरित्रानुकरणसे विशुद्ध-हृदय होकर कृतज्ञतासे उनके चरणोंमें लुट पड़नेकी इच्छा करता है, उन्हें भगवान् कहकर पुकारता है। परन्तु वास्तवमें सद्गुरुकी यथार्थ पूजा बाहरी उपकरणोंसे कभी नहीं हो सकती, उनकी सच्ची पूजा उनके आज्ञा-पालन और उनके त्याग, प्रेम, भक्ति, ज्ञान, सद्गुण आदिके अनुकरणसे होती है। सद्गुरु शिष्यके द्वारा यदि कोई पूजन चाहता है तो वह यही चाहता है। इसके विपरीत शिष्यकी आत्मिक उन्नतिका कुछ भी ख़याल न रख, जो मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाके भूखे रहते हैं, केवल अपने पैर पुजवाने और आरती उतरवानेमें ही जिनको प्रसन्नता होती है वे कदापि सद्गुरु नहीं हैं। विशेषकर जो गुरुके आसनपर बैठकर धन और स्त्रीकी इच्छा करते हैं उनसे तो बहुत ही सावधान रहना चाहिये। भागवतमें कहा है कि सत्पुरुष धन और स्त्रियोंके सङ्गियोंका सङ्ग भी दूरसे ही त्याग दें। इसके विपरीत जो अपनेको सत्पुरुष मानते और कहलाते हुए भी कामिनी-काञ्चनमें आसक्त रहते हैं, उनको साधु मानना बहुत ही जोखिमका काम है। हालमें गोरखपुरमें एक विद्वान् संन्यासी आये थे, वे आठ सालसे सद्गुरुकी खोजमें हैं। खेदकी बात है कि भाग्यवश उन्हें आरम्भसे ही बहुत कटु अनुभव होते गये, जिससे वह इस समय बहुत ही शंकाशील बन गये हैं और 'दूधका जला छाछ भी फूँक फूँककर पीता है' इस कहावतके अनुसार वह हर जगह केवल सन्देह करते और श्रद्धा छोड़कर केवल परीक्षाके लिये ही जाते हैं, जिससे उनको यथार्थ सत्पुरुषका मिलना एक प्रकारसे कठिन-सा हो गया है, यहां तक कि दैवीसम्पत्तिके गुणोंको भी अब वह कुछ कुछ अव्यावहारिक मानने लगे हैं तथापि वह यथार्थमें बहुत ही सच्चे, सद्गुणी साधु प्रतीत होते थे। उन्होंने अपना कुछ अनुभव इसप्रकार सुनाया-

पहले उन्हें एक त्यागी संन्यासी मिले, संन्यासीजी बड़े विद्वान् थे, बहुत सी भाषाओंके जानकार थे, भारतवर्षमें भी उनकी जोड़ीके विद्वान् अंगुलियोंपर गिनने लायक होंगे। पढ़े-लिखे समुदायपर उनका बड़ा भारी प्रभाव था, संन्यासीजी बड़े भक्त मालूम होते थे, नारदभक्तिसूत्र या श्रीभागवतका श्लोक पढ़ते-पढ़ते उनकी आँखोंसे आँसुओंकी अजस्र धारा बहने लगती थी और सचमुच उनको भाव-समाधि हो जाया करती थी, परन्तु यह सब कुछ होनेपर भी अन्तमें वह व्यभिचारी सिद्ध हुए। सम्भव है, वे पहले अच्छे साधक रहे हों, परन्तु पीछेसे पूजा आरम्भ हुई, खानेको खूब माल-मलीदे मिलने लगे, स्त्रियोंका अवाधित सङ्ग हुआ, जिससे उनका पतन हो गया।

एक दूसरी जगह एक साधु (?) जो बाहरसे बड़े ही त्यागी मालूम होते थे, बड़े बड़े लोग उनके पास जाया करते, वे अपनी झोलीमेंसे भस्मकी चुटकी सबको दिया करते। एक दिन चाय बनी। शिष्यने कहा, 'महाराज, चीनी नहीं है' गुरुजी बोले, 'नहीं सही, यह भस्मकी चुटकी ही डाल दो' झोलीमेंसे चुटकी भरकर चायमें डाल दी, चाय वास्तवमें मीठी हो गयी। स्वामीजीका चमत्कार देखकर सब मुग्ध हो गये, पीछेसे पता लगा वे अपनी झोलीके एक भागमें भस्म और दूसरे भागमें 'सैकेरिन' (जिसमें चीनीसे कई सौ गुना मीठास होता है) रखते थे और राखकी जगह उसको डाल चमत्कार बतलाकर लोगोंको ठगा करते थे।

एक आश्रममें एक बड़े त्यागीके रूपमें रहनेवाले संन्यासी उपदंशके रोगसे पीड़ित मिले, ऊपरसे उनका व्यवहार देखकर उन्हें सभी लोग महात्मा समझते थे।

बम्बईके एक प्रसिद्ध ज्ञानी भक्त कहलानेवाले महाराष्ट्र, जो अपनेको एक बहुत बड़े आदमीका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुरु बतलाते थे, श्रद्धाके साथ अपने घर ले जानेवाले भक्तकी पत्नीका सतीत्व नाश करते पकड़े गये।

कलकत्तेके कृष्ण बने हुए दुराचारी हीरालाल-का किस्सा तो सभी जानते हैं।

ऐसे अनेक उदाहरण उन्होंने दिये ! बात भी यही है, आज कहीं ज्ञान और भक्तिके नामपर धन लूटा जाता है, तो कहीं सतीत्व हरण होता है; कहीं पूजा-प्रतिष्ठा करवायी जाती है तो कहीं भोग-विलासकी सामग्री इकट्ठी की जाती है, सारांश यह कि आजके इन ज्ञानी भक्त कहलानेवाले रंगे सियार गुरुओंने धर्म-कर्मको चौपट कर दिया है ! ऐसे पाखण्डी गुरुओं, भक्तों और ज्ञानियोंसे बचकर ही रहना चाहिये। एक ज्ञानी बने हुए व्यक्तिने मुझसे एक दिन कहा था, भाई, काम-क्रोध तो इन्द्रियोंके धर्म हैं, जैसे मूत्र-त्यागका वेग आता है ऐसे ही शुक्र-त्यागका भी नैसर्गिक वेग आता है। जब वह वेग आवे तब किसी भी स्त्रीके प्रति उस वेगको निवारण कर ले, इससे ज्ञानमें क्या हानि होती है ? इन्द्रियोंका धर्म तो इन्द्रियोंमें रहेगा ही। एक भक्त (?) ने एक सज्जनसे कहा था, भाई चलो, वृन्दावनमें रहो, वहां रहकर चोरी व्यभिचार भले ही करो, कोई हर्ज नहीं, वहां रहनेमात्रसे ही उद्धार हो जायगा। सम्भव है, यह उनकी शुद्ध भावना हो, परन्तु ऐसे विचार और भावनाओंने ज्ञान और भक्तिको कलङ्कित अवश्य ही कर दिया। विचारसागरके दो चार दोहे याद करने या श्रीरामकृष्णके नामपर दम्भसे दो चार बूंद आंसू बहा देनेसे ही ज्ञानी या भक्त नहीं हुआ जाता। ज्ञानी और भक्त बनना बहुत ही टेढ़ी खीर है। ब्रह्मज्ञानकी तीक्ष्णधार तलवारसे जो आसक्ति और वासनाका समूलो-च्छेदन कर डालता है वह ज्ञानी हो सकता है और जो भगवत्प्रेमकी धधकती हुई अग्निमें कूदकर अहङ्कारसहित अपना सर्वस्व फूंक डालता है वह भक्त बन सकता है। ज्ञानी और भक्तमें दैवी-सम्पत्तिके गुण स्वाभाविक ही प्रकट हो जाते हैं। ज्ञानी और भक्त होकर दैवीसम्पत्तिके गुणोंसे शून्य रहना वैसे ही असम्भव है जैसे मध्याह्न-सूर्यके प्रचण्ड प्रकाशमें खुले मैदानमें अन्धकारका रहना। भगवान् श्रीकृष्ण ज्ञानके बीस साधन इस प्रकार बतलाते हैं—

अपनेमें श्रेष्ठताका अभिमान न रखना, दम्भ-का सर्वथा त्याग करना, अहिंसाका पालन करना, अपना अनिष्ट करनेवालेका भी दोष क्षमा कर देना, मन, वाणी, शरीरसे सरल रहना, श्रद्धाभक्तिसहित आचार्यकी सेवा करना, बाहर-भीतरसे शुद्ध रहना, मनको स्थिर रखना, बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीरको वशमें रखना, इस लोक और परलोकके सभी भोगोंसे वैराग्य हो जाना, अहङ्कार न रहना, जन्म-जरा-रोग-मृत्यु आदि दुःख तथा दोषोंको ध्यानमें रखना, स्त्री, पुत्र, धन, भवन आदिमें मनका न फंसना, किसी भी वस्तुमें 'मेरापन' न रहना, प्रिय-अप्रियकी प्राप्तिमें चित्तका सदा सम रहना, परमात्माकी अनन्य भक्ति करना, शुद्ध एकान्त देशमें साधनके लिये रहना, सांसारिक जनसमुदायसे रागरहित होना, परमात्मा-सम्बन्धी ज्ञानमें नित्य संलग्न रहना, तत्त्व-ज्ञानके अर्थरूप परमात्माको सदा सर्वत्र देखना। (गीता अ० १३। ७-११)

ये तो ज्ञानके साधन हैं, इन साधनोंमें लगे रहनेसे तत्त्व-ज्ञानकी प्राप्ति होती है। जब साधनोंमें ही पापका विनाश और दैवीसम्पत्तिका विकाश है, तब सिद्ध ज्ञानीमें तो पाप, दुराचार या कामिनी-काञ्चनके प्रलोभनकी सम्भावना ही कहां है ? ज्ञानके साधकके सम्बन्धमें भगवान्ने कहा है—

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

(गीता १२। ३-४)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो ज्ञानका साधक इन्द्रियोंके समुदायको भलीभांति वशमें करके अचिन्त्य, सर्वव्यापी, अनिर्देश्य, कूटस्थ, ध्रुव, अचल, अव्यक्त, अक्षर ब्रह्मकी भलीभांति उपासना करते हैं और सबमें सर्वत्र समभावयुक्त होकर प्राणीमात्रका हित करते रहते हैं वे मुझको (ब्रह्मको) प्राप्त होते हैं।

ज्ञानके साधकके लिये ही जब इन्द्रियसमुदायको वशमें कर लेना, हानि-लाभ, जय-पराजय, मान-अपमान, जीवन-मृत्यु, देवता-मनुष्य, सबमें सर्वत्र समबुद्धि होना और सर्वभूतोंके हितमें रत रहना अनिवार्य है तब ज्ञानस्वरूप सिद्धकी तो बात ही क्या है! उसमें वे सद्गुण स्वाभाविक ही होने चाहिये। इसी प्रकार साधक भक्तके उद्धारका जिम्मा लेते हुए भगवान् कहते हैं—

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ! मय्यावेशितचेतसाम्॥

जो साधक मुझ भगवान्के परायण होकर सारे कर्म मुझमें अर्पण करके अनन्ययोगसे केवल मेरा ही ध्यान-भजन करते हैं, हे अर्जुन! उन मुझमें भलीभाँति चित्त लगानेवाले भक्तोंका मैं इस मृत्युरूप संसार-सागरसे शीघ्र ही उद्धार कर देता हूं।

यह भक्तिके साधककी बात है, प्रेमी भक्तके लक्षण तो भगवान् इसप्रकार बतलाते हैं—

जो किसी भी प्राणीसे द्वेष नहीं करता, जो सबके साथ मित्रताका व्यवहार करता है, जो बिना किसी भेदभावके दुखी जीवोंपर सदा दया करता है, जो परमात्माके सिवा किसी भी वस्तुमें 'मेरापन' नहीं रखता, जो 'मैं' पनको त्याग देता है, जो सुख-दुःख दोनोंमें परमात्माको समभावसे देखता है, जो अपना बुरा करनेवालेका भी भगवान्से भला मनाता है, जो लाभ-हानि, जय-पराजय, सफलता-विफलतामें सदा सन्तुष्ट रहता है, जो अपने मनको परमात्मामें लगाये रखता है, जो मन-इन्द्रियोंको जीत चुका है, जो परमात्मामें या अपने ध्येयमें दृढ़ निश्चय रखता है, जो अपने मन-बुद्धिको परमात्माके अर्पण कर देता है, जो किसीके भी उद्वेगका कारण नहीं बनता, जो किसीसे भी उद्वेगको प्राप्त नहीं होता, जो सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्तिमें कोई आनन्द नहीं मानता, जो दूसरेकी उन्नति देखकर नहीं जलता, जो सदा सर्वत्र निर्भय रहता है, जो किसी भी स्थितिमें उद्विग्न नहीं होता, जो किसी भी वस्तुकी आकाङ्क्षा नहीं करता, जो बाहर-भीतरसे सदा पवित्र रहता है, जो भगवान्की भक्ति करने और अपने दोषोंका त्याग करनेमें दक्ष है, जो पक्षपात-रहित है, जो किसी भी अवस्थामें व्यथित नहीं होता, जो सब कर्मोंका आरम्भ परमात्माकी लीलासे ही होता है ऐसा मानता है, जो भोगोंको पाकर फूलता नहीं, जो भोगोंके नाश हो जानेपर रोता नहीं, जो अप्राप्त या नष्ट भोगोंको पुनः प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं करता, जो शुभाशुभ कर्मोंका फल नहीं चाहता, जो शत्रु-मित्रमें समभाव रखता है, जो मानापमानको एकसा समझता है, जो सर्दी-गर्मीमें सम रहता है, जो सुख-दुःखको समान समझता है, जो किसी भी वस्तुमें आसक्ति नहीं रखता, जो निन्दा-स्तुतिको समान समझता है, जो परमात्माकी चर्चाके सिवा दूसरी बात नहीं करना चाहता, जो परमात्माके प्रेममें मस्त होकर अपनी स्थितिमें सन्तुष्ट रहता है, जो घरद्वारमें ममता नहीं रखता, जो अपनी बुद्धिको परमात्मामें स्थिर कर देता है, जो भागवत-धर्मरूपी अमृतका सदा सेवन करता है, जो परमात्मामें पूर्ण श्रद्धा-सम्पन्न है, और जो केवल परमात्माके ही परायण है (गीता अ० १२। १३ से २०) ऐसा पुरुष ही वास्तवमें भक्त है।

उपर्युक्त कसौटीमें जो खरे उतरते हैं वे ही पूर्ण ज्ञानी या भक्त हैं, जो अधूरे हैं, पर आगे बढ़नेका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रयत्न कर रहे हैं और इन लक्षणोंका विकास अपने अन्दर बढ़ा रहे हैं, वे ही सच्चे साधक हैं। अन्यथा 'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः' इस श्रुतिके अनुसार अन्धे गुरु-अन्धे चेलोंकी जमातको साथ लेकर पापोंके गड्ढेमें गिरते हैं।

यद्यपि इन सारे लक्षणोंसे युक्त पुरुषका मिलना परम दुर्लभ है, और ऊपरके भावोंसे किसीको पहचानना भी अत्यन्त कठिन है, तथापि अपनी बुद्धिके अनुसार इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि जहां मान बड़ाई और कामिनी-काञ्चनका लोभ नहीं है, वहां रहने और वैसे पुरुषका उपदेश माननेमें कोई आपत्ति नहीं है। हर किसीको गुरु कभी नहीं बनाना चाहिये। गुरुको तो एक प्रकारसे अपना जीवन अर्पण कर दिया जाता है। जीवन अर्पण बहुत ही सोच समझकर करना कर्तव्य है। नाममात्रके गुरु-चेलोंसे कोई लाभ नहीं, हानि तो प्रत्यक्ष ही है।

इस बातसे निराश कभी नहीं होना चाहिये कि इस युगमें सद्गुरु हैं ही नहीं, सद्गुरुकी वास्तविक खोज ही कहां होती है? हमारे हृदयोंमें तीव्रतम पिपासा ही कहां है? तीव्र पिपासा हो तो लेखकका विश्वास है कि प्यास बुझानेवाले अमृत-समुद्र सद्गुरुकी प्राप्ति अवश्य ही हो सकती है।

रोको ये अतृप्तिके झोंके

इन अतृप्तिके झोंकोंको रोको, कम करो, आज,—अब मालिक!
टिकने तो दो पैर, जरा स्थिर हो लेने दो अब मालिक!

रसकी एक बूँद पानेको भटका बहुत, बहुत टकराया।
कितनी ही कुइय्योंमें डाले बाँस, नहीं पर कुछ भी पाया॥

मेरे मालिक! इन झोंकोंमें तृणवत् उड़ता काँप रहा हूँ।
पलभरको तुम इन्हें थाम लो, देखो कैसा हाँप रहा हूँ॥

पलभरको,—हाँ, पल ही भरको, थामो तो पर मालिक! इनको।
बड़ा व्यस्त हूँ, बड़ा त्रस्त हूँ, व्याकुल हूँ, थामो तो इनको॥

तनिक, जरा ही देर सही, ले लेने दो विश्राम।
जीवनभर फिर चहे उड़ाना, इनमें तुम अविराम॥

—बालकृष्ण बलदुवा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रार्थना

(लेखक—श्रीवियोगी हरिजी)

[पूर्वप्रकाशितसे आगे]

जानता नहीं, कि कृतज्ञता कैसे प्रकट की जाती है। मैं तो इतना ही कहना जानता हूं, कि जब-जब तुमसे जो मांगा, तब-तब तुमने वह दिया, और ख़ूब दिया। अब, अन्तमें, आज तुमसे मैं तुम्हींको मांगता हूं। तुम्हारे दानी हाथसे यह एक दान और मिल जाय, नाथ!

मैं स्वार्थी हूं। बदलेका भाव मेरे हृदयसे न अभीतक गया है और न जायगा। तुमने मुझे जैसे अपना बना लिया, वैसे तुम अभी मेरे कहां हुए? इसीसे तो मैं तुमसे 'तुम्हें' मांगता हूं। सामने आ भर जाओ, सरकार! तुमपर कब्ज़ा करते फिर देर न लगेगी।

ध्यान रहे, यह मेरी कोई अनुचित मांग नहीं है। तुमसे तुम्हें मांगना क्या मेरी कोई अनधिकार चेष्टा है? अपनी निजी सम्पत्तिपर दावा करना भी क्या कोई अपराध है, न्यायाधीश?

जो हो, अब तुम अपने आपको मेरे सिपुर्द कर दो, मेरे हो जाओ।

× × ×

क्या अच्छा हो, कि मैं तो हार्दिक प्रेमसे अपनी निर्धन कुटियामें सबका स्वागत-सत्कार करूं, और सब मेरे गर्वोन्नत मस्तकको अपने पैरोंसे दुर्दलित किया करें। मैं तो सबके ऊपर सुख-सुमन बरसाया करूं, और सब मुझे कष्ट-कण्टकोंसे छेदते रहें। कब सफल करोगे, नाथ, मेरी यह मधुमयी लालसा?

यह भी क्या अच्छा हो, कि मैं तो सबको नित्य प्रेमसे याद किया करूं, और सब मुझे चित्तसे उतारकर सदाको भुला दें। मैं तो सबको प्यार-भरी पलकोंपर बिठाये रहूं और सब मुझे घृणाकी दृष्टिसे देखा करें। कब पूरी करोगे, प्रभो, मेरी यह अधीर अभिलाषा?

× × ×

अरे, डाल दे थोड़ी-सी अपनी प्रेम-मदिरा मेरे जीवनकी ख़ाली प्यालीमें, मेरे अलबेले साक़ी! ज़रा-सी पिला दे अपनी वह प्रीति-पेया, मेरे प्राण-प्यारे सद्गुरु! फिर पड़ा रहने दे मुझे कहीं अलमस्त तेरी प्यारी कसकीली यादमें।

कुछ ऐसा कर, कि तेरी इस लीलामयी मदिरा-को पीकर मैं अपनी मतवाली आंखोंके रङ्गमें इन सारे मत-मज़हबोंको रँग डालूं। दीन और दुनिया-के दामनपर कोई और ही रंग चढ़ा दूं। ख़ुद भी छक जाऊं, और औरोंको भी छका दूं।

यह होश मेरे किस कामका? मुझे तो तेरी वही मीठी बेहोशी चाहिये। जबतक यह होश है, तबतक मैं तेरी किसी भी आज्ञाका पालन न कर सकूंगा। थोड़ी-सी प्रेम-मदिरा पिलाकर बे-होश कर दे, मेरे प्राणेश! और फिर देख, कि मैं तेरा आदर्श आज्ञावाही सेवक हूं या नहीं, एक अना-सक्त कर्मयोगी हूं या नहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सो, डाल दे अब ज़रा-सी मदिरा मेरी इस ख़ाली जीवन-प्यालीमें, मेरे अलबेले साक़ी !

× × ×

प्यारे, तुम्हीं राम हो और तुम्हीं रहीम। घट-घटमें तुम्हारी ही लगन-लहर तो लहरा रही है। कौन घट ख़ाली है तुम्हारे प्रेम-रससे ? बलिहारी ! ख़ूब रम रहे हो रोम-रोममें, मेरे प्यारे राम !

ज़र्रे-ज़र्रेमें तुम्हारा ही रहम तो समाया हुआ है। क्या ही मस्तानी चालसे झर रहा है तुम्हारी दयाका यह बारह-मासी झरना ! प्यारे रहीम, अच्छा पिलाया है इस थके-माँदे राहगीरको अपने रहमका यह ठण्डा-ठण्डा शर्बत।

मेरे राम, ऐसे ही हमारे रोम-रोममें रमे रहो। मेरे रहीम, इसी तरह हमें अपने रहमका अमी-रस पिलाते रहो।

× × ×

उन लोगोंको अपना पता और क्या बताऊं। प्यारे, तुम्हीं मेरे पता हो। जिसे मुझे जानना हो, वह तुम्हारे नामसे जान ले। पर मुश्किल तो यह है, कि तुम ख़ुद ही लापता हो !

तुम्हें अलग करके कोई मेरा पता न पूछे। तुमसे रहित 'मैं' तो अब भुला ही दिया जाऊं, तो अच्छा। अगर 'मैं' और 'मेरा' तुम्हारा नहीं हो गया, तो फिर मेरे पते-ठिकानेसे किसीको लाभ ही क्या ? और नहीं तो कम-से-कम मेरे नामपर संसारमें नास्तिकताका प्रचुर प्रचार तो न हो, प्रभो !

× × ×

यहां कथनी कुछ और है, तो करनी कुछ और ही है। जितना अन्तर मेरे कर्म और कथनमें है, उससे कहीं अधिक अन्तर मेरे वचन और मनमें है। प्रभो, मेरे मन, वचन और कर्ममें क्या कभी एकरूपता हो सकेगी ?

कितना अधिक दम्भ भरा हुआ है मेरे मलिन मनमें ! अपने ऊपरी दिखावसे संसारको कैसा ठग रहा हूं ! वाह ! वाणीकी विदग्धता और कर्म-कुशलतासे अपने कपट-जालमें अबतक सैकड़ों सरलहृदय सज्जनोंको फांस चुका हूं। धन्योऽस्मि ! कृतकृत्योऽस्मि !!

प्रभो ! पर, अब डर लगता है। अब यहां एक क्षण भी खड़ा नहीं रहा जाता। सत्यके चक्रसे मेरे दम्भ-दानवका गर्वोन्नत मस्तक खण्ड-खण्ड कर दो न, चक्रपाणे !

अरे, मेरी यह पिशाचिनी कर्म-कुटिलता मुझे आज खाने दौड़ती है। नाथ ! मेरी इस भयावनी छद्म-छायासे मुझे बचा लो। मेरा यह कपट-जाल आज मुझे ही फांस रहा है। रक्षा करो, प्रभो, रक्षा करो। शरण दो, दीनबन्धो, शरण दो।

× × ×

प्रभो, मुझे इतनी ही श्रवण-शक्ति दो, जिससे मैं सताये और कुचले हुए दीन-दुर्बलोंकी हृदयको हिला देनेवाली आहें और अनाथ दुखियोंका करुण-क्रन्दन ही सुन सकूं; आमोद-प्रमोदका कलरव, उत्सवका कोलाहल और गान-वाद्यका मनोहारी स्वर-ताल न सुनायी दे तो अच्छा। दयानिधे ! मुझे बहरा बना दो, पर निर्दय न बनाओ।

नाथ, मुझे इतनी ही दर्शन-शक्ति दो, जिससे मैं लड़खड़ाते हुए भूखे-प्यासे दलित दुखियोंको देख-कर चार आंसू बहा सकूं; चञ्चला लक्ष्मीकी विलास-लीला और प्रमत्त समाजकी केलि-क्रीड़ा न दिखायी दे तो अच्छा। दयानिधे ! मुझे अन्धा बना दो, पर निर्दय न बनाओ।

× × ×

जीवन भर क्या इसी तरह छकाते रहोगे, जीवन-धन ? कबसे खोज रहा हूं तुम्हें ! अब तो आ मिलो, मेरे हृदय-चन्द्र ! एक ही बार सही, अपनी प्यारी झलक तो दिखा दो, मेरे प्यारे प्रेम-निधे !

जीवन-घटका कुछ जल तो छलककर गिर गया और कुछ चू गया। अब इसमें दो-ही-चार बूंदें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बची हैं। अब भी आ जाओ। दो-चार-ही बूंदें सही, तुम्हारे चरणोंपर तो चढ़ा दूंगा।

दीपक भी अब बुझनेको है। नाथ, इसमें अब तेल रहा ही कहां है। अब तो यह बत्ती ही जल रही है। सो यह कबतक चलेगी। अब भी अपना प्यारा दीदार दिखा दो, प्यारे! इससे आरती तो क्या उतारूंगा, इस बुझती हुई लौके प्रकाशमें तुम्हारी एक प्यारी झलक देख लूंगा।

इतनी साध तो अब पूरी कर ही दो कृपाकर, करुणानिधे!

× × ×

लो, तुम्हें मैं कहां-कहां खोजता फिरूं। मन्दिर-में खोजूं या मठमें? मसजिदमें खोजूं या गिरजा में? जहां-तहां तुम्हीं तुम तो हो। कहां नहीं हो, प्यारे, तुम?

होगे, औरोंके लिये सब जगह व्यापक होगे। मैं तुम्हारी सर्वव्यापकता कैसे मान लूं। मझे तो तुम अभीतक कहीं भी नहीं मिले। तुम्हें प्रेमसे प्रकट होते सुना है। सो प्रेम तो मेरे वशका नहीं। मैं और प्रेम! प्रेम ही मिल गया होता, प्यारे, तो फिर तुम्हें खोजनेकी क्या ज़रूरत थी?

जीवन-धन! क्यों व्यर्थ तङ्ग कर रहे हो? क्यों नहीं प्रकट हो जाते प्रेमरूपमें इन तड़पती हुई आंखोंके आगे, मेरे प्यारे प्राणेश्वर!

× × ×

हमें भी थोड़ी-सी दया दे दो, दयानिधे! तुम्हारे द्वारपर आज हम हृदय-पात्र लेकर दयाकी भीख मांगने आये हैं। हमारी असीम निर्दयता ले लो और उसके बदलेमें थोड़ी-सी दया दे दो, नाथ!

अरे, कुछ पार हमारी निर्दयताका! वे सब दाने-दानेको तरस रहे हैं, कलप-कलपकर भूखों मर रहे हैं, और हम, रसनाके दास, सैकड़ों प्रकारके मधुर व्यञ्जन खाते-खाते भी नहीं अघाते! वे, देखो, हमारे ही भाई एक चिथड़ेकी लंगोटी लगाये नंगेबदन जाड़ेमें ठिठुर रहे हैं, और हम दिनमें दस-दस बार रङ्ग-रङ्गके कपड़े बदलते हैं! वे हमारी ही माकी गोदके लाल, टूटे-फूटे झोंपड़ों या मैदानमें ही पड़े सड़ रहे हैं, और हम सुरम्य भवनोंमें मख़मली गद्दोंपर विलास-क्रीड़ा करनेमें मस्त हैं! वहां वे पद-दलित, वे सर्वस-लुटे हुए किसान और मजूर गुहार मार-मारकर रो रहे हैं, और हम यहां वीणा और वंशीके स्वरमें राग-रागिनी अलापते हैं! वहां वे दीन-दुर्बल अत्याचारकी चक्कीमें पीसे जा रहे हैं, और यहां हम इन मन्दिर-मसजिदोंमें बक-ध्यान लगाये ईश्वरोपासना करते हैं! इस महान् अमानुषीय अन्तरको देखकर हमारी निर्लज्ज आंखों-से कभी दो बूंद आंसू भी नहीं टपकते! धिक्कार है हमारे इस हृदय-हीन निर्दय जीवनको!

नाथ! न हम अब अर्थ चाहते हैं, न काम, न धर्म चाहते हैं, न मोक्ष। केवल दयाके इच्छुक हैं, दयाके भिक्षुक हैं। सो थोड़ी-सी दया दे दो, दयानिधे!

× × ×

यह अच्छा रहस्य खोल दिया, दयानिधे! रंग-रंगकी कैसी सुन्दर प्यालियां रखी हैं! इनमें कोई पुरानी प्याली है, कोई नयी। कोई बड़ी है, कोई छोटी। कोई सोनेकी है, कोई मिट्टीकी। पर है सबमें एक ही अमी-रस। तुमने इन सब प्यालियोंमें एक ही प्रेम-सुधा भर रखी है। धन्य!

व्यर्थ ही लड़े मरते हैं ये मूर्ख मतवाले मज़हबी। प्यालियोंके ऊपरी रूप-रंगहीपर इन धर्म-रसिकों-की आंख अटकी हुई है। इनके अन्दर छलकता हुआ अनुराग-मधु इन्होंने अभी देखा ही कहां? इन मँडराते हुए लोभी मधुपोंने अभीतक किसी भी प्याली-में ओठ नहीं लगाया। एकबार भी इन भेदवादियों-को इस प्रेम-रसका चसका लग जाय, तो इन्हें भी सारी नयी-पुरानी प्यालियां एक ही सरस मधुसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भरी नज़र आने लगें। क्या अच्छा हो—उस दिन हर प्यासे पथिकके मुंहमें हर प्यारी प्याली कैसा मीठा आनन्द-रस उँड़ेलने लग जाय।

हम सभीके आगे खोलकर रख दो न अपना रस-रहस्य, प्यारे प्रेमेश्वर!

× × ×

मैं तुम्हें इस दारुण दारिद्र्य-युगमें गायन गा-गाकर रिझाऊं, यह मेरे वशकी बात नहीं। दरिद्र-नारायणके तुच्छ उपासकको गान-वाद्यके भावना-भवनमें न बुलाओ, दीनबन्धो!

हां, आज राग-रागिनियोंके मादक आलापोंमें वह स्वर्गीय सरस संगीत कहां है, जो दलित दुखियोंके विलापों और पीड़ितोंके करुण-क्रन्दनोंमें है? सो, मुझे इन मधुमय आलापोंकी ओरसे खींचकर उन कर्ण-कटु करुण-क्रन्दनोंके ही निकट ले चलो, करुणामय!

तुम्हारे साधना-मन्दिरमें उपासक आज वीणा और वंशी कहां बजा सकता है। यह हृदयहीन ग़रीब साधक तुम्हारे सामने अब और अधिक निर्दय और निर्लज्ज न बनेगा, स्वामी! गीत-वाद्यके मोह-पाशमें फंसाकर मुझे यह क्या बना रहे हो, नाथ?

इस दारुण दारिद्र्य-युगका यह पसीना बहाने-वाला मजूर उपासक तो तुम्हें टांकी और हथोड़ेके स्वरसे रिझाने आया है, वीणाकी झनकार और बांसुरीकी तानसे नहीं।

× × ×

प्राणेश, तू भी माफ कर दे और मेरे प्यारे मिलने-जुलनेवालोंसे भी मुझे माफ़ी दिला दे। तू तो किसी तरह क्षमा-दान दे भी देगा, करुणा-निधे! पर वे सब मुझे कैसे क्षमा करेंगे?

नाथ! मैं घोर अपराधी हूं। मेरे काले जीवन-का प्याला अपराधोंकी ही मोहिनी मदिरासे भरा हुआ है। तेरे प्रेम-रसकी तो उसमें आजतक एक बूंद भी नहीं डाली है। क्षमा कर, तेरे पवित्र पैरोंपर आज मैं अपने इसी प्यालेको चढ़ाता हूं।

पर और सबोंसे कैसे माफ़ी मांगूं। मैंने अगणित अपराध किये हैं, प्रभो! मिथ्यावादितासे मित्रता जोड़कर सत्य और विश्वासके साथ मैंने जीवनभर प्रवञ्चना ही की है। सच पूछो तो, मैं तो किसीको आज अपना मुंह दिखाने लायक भी नहीं रहा। इसीसे तो बार-बार विनय करता हूं, कि तू ही मेरे उन प्यारे मिलने-जुलनेवालोंसे किसी तरह मुझे माफ़ी दिला दे। नाथ, जबतक मुझे क्षमा-दान न मिलेगा, तबतक अपने इस मैले जीवन-प्यालेमें तेरा प्रेम-रस मैं कैसे उँड़ेल सकूंगा? सो, आज तू मुझ भिक्षुकको क्षमाकी भीख दे दे और दिला दे।

× × ×

सचमुच आज मेरे आनन्दकी सीमा नहीं। नाथ! तुमने यह अच्छा अनायास अनुसन्धान करा दिया। समय रहते इस महान् सत्यका पता तो लग गया। धन्य है आज मेरा भाग्य, विभो!

यह कैसा अच्छा है, कैसा भला है। वह भी कैसा अच्छा है। ये तो सभी अच्छे हैं। हाँ, प्रभो, मुझसे सब अच्छे हैं। मैं ही बुरा हूं, और सबसे बुरा हूँ। उचित ही है, जो मेरी नित्य निन्दा हुआ करती है। और नहीं तो, इससे मेरे मनका कुछ मैल तो कट जाता है। सद्गुरु-समान मेरे प्यारे निन्दक जुग-जुग जियें।

इतना तो मैं स्वयं ही स्वीकार करता हूं, कि मेरा अहङ्कार-मद हिमाद्रि-शृङ्गसे भी उत्तुङ्ग है; मेरा क्रोध प्रचण्ड दावानलसे भी अधिक अङ्ग-दाहक है; मेरा मोह महोदधिसे भी अधिक अगाध और अपार है; मेरा काम हालाहलीसे भी अधिक उन्मादक और मारक है। न जाने, कबसे द्वेषकी अग्नि-लताको आलिङ्गन दिये बेहोश पड़ा हूं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पापियोंमें मैं महान् हूं, एक हूं, अद्वितीय हूं। मेरे संक्रामक पाप-कीटाणु समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त हो रहे हैं।

मेरी आत्म-दुर्बलताओंका अन्त नहीं, नाथ! न्याय तो यही है, कि लोक मुझे घृणाकी ही दृष्टिसे देखे। मेरी सच्ची निन्दात्मक आलोचना, इस तरह, मुझे कभी-कभी तुम्हारी याद तो दिलाती रहेगी। हृदयके दर्पणमें मैं सदा अपनी बुराइयोंका ही प्रतिबिम्ब देखा करूं, नाथ! यही विनय है। अन्त समयतक मेरा यही विश्वास बना रहे, कि मुझसे तो सभी अच्छे हैं, मैं ही सबसे बुरा हूं।

प्रभो, मैं तबसे तुम्हारे दरबारमें ही तो हाज़िर होनेकी यह सब तयारी कर रहा हूं। अब कहीं याद आयी है, कि एक-एक बूंद करके मेरे इस कच्चे घड़ेसे कितना पानी चू गया है! तुम्हारे उस संकेत-रहस्यको मैंने अबतक समझा ही कहां था। अब, आज, सांझकी इन खिसकती हुई घड़ियोंमें जीवनभरका लेखा-जोखा ठीक करने बैठा हूं!

सर्वज्ञ, तुमसे क्या छिपा है। नाथ, अपराध क्षमा हो, तुम्हारा दिया हुआ वह नक़शा न जाने मुझसे कहां खो गया, जिसे देख-देखकर मुझे अपने जीवनकी, तुम्हारे रहने लायक, एक इमारत खड़ी करनी थी। हाय! क्या तो बनाना था, और क्या बना डाला!

अब मुझसे कल अपने दया-दरबारमें कोई जवाब न मांगना, मेरे सिरजनहार! अब तो तुम्हारे चरणोंपर पश्चात्तापकी ही भेंट चढ़ाकर अपने प्रमादपूर्ण पापोंका प्रायश्चित्त करूंगा। नाथ! तुम्हारे दरबारमें उपस्थित होनेकी मेरी कुछ ऐसी ही तयारी हो रही है।

अब तो, पतित-पावन! तुम्हीं मुझे अंगीकार करो तो, कर सकते हो। ख़रीदना चाहो—मुफ्त ही—तो मुझे तुम्हीं खरीद सकते हो। प्यारे, ऐसे भोले गाहक यहां एक तुम्हीं हो। हां, मुझे और कौन अंगीकृत करेगा? न तो मैं ही किसीके कामका हूं, और न कोई मेरे ही कामका है। न मैं स्वयं अपनेको ही सुख पहुंचा सकता हूं, और न औरोंको ही। न खुद ही हँस-खेल सकता हूं, और न औरोंको ही हँसा-खेला सकता हूं। हृदयहीन अरसिक तो हूं ही, मस्तिष्क-हीन महान् मूर्ख भी हूं। सच पूछो तो, मेरा अर्थ-विहीन 'अस्तित्व' ही इस धरातलपर अनावश्यक है। एक प्रकारसे मैं बकरीके गलेका थन हूं।

यह तो मेरा विश्वास है, कि जिसे कोई न चाहता हो, उसे तुम ही चाहते हो; जिसे कोई अपनी शरणमें न लेता हो, उसे तुम्हीं अपने चरणोंकी अकुतोभय शरण देते हो; जिसका कहीं कोई न हो उसके तुम्हीं जीवनसर्वस्व हो जाते हो।

सो, नाथ! अब तो तुम्हीं मुझे अंगीकार करो।

दीप-दान

भीम वेगसे चला आ रहा था विप्लववादी तूफान।
भेद तिमिरको, ऊपर उठता था सागरका भैरव गान॥

सारे तारे छिपे हुए थे गगन-गुफामें हो भयमान।
भटक रहा था अन्धकारमें आश्रय-हीन पथिक अनजान॥

इस असमयमें तुम आये करुणा-रथपर चढ़ हे गुणवान!
'बढ़ते जाओ' कहा पथिकसे दे करमें प्रदीपका दान॥

—श्रीजगन्नाथ मिश्र गौड़ 'कमल'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
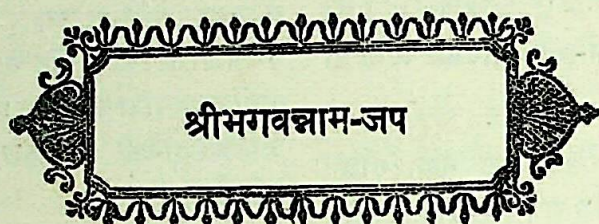
श्रीभगवन्नाम-जप

रसना साँपिनि बदन बिल , जे न जपहिं हरि-नाम ।
'तुलसी' प्रेम न रामसों , ताहि बिधाता बाम ॥
राम नामको अंक है , सब साधन है सून ।
अंक गये कछु हाथ नहिं , अंक रहे दस गून ॥
राम-नाम मनि-दीप धरु , जीह देहरी द्वार ।
'तुलसी' भीतर बाहिरौ , जो चाहसि उजियार ॥
—तुलसीदासजी

नाम जपत कुष्टी भला, चुइ चुइ परै जु चाम ।
कञ्चन देह केहि कामकी, जा मुख नाहीं राम ॥
—कबीरजी

भय-नासन दुरमति-हरन, कलिमहँ हरिको नाम ।
निसिदिन 'नानक' जो भजै, सफल होइ सब काम ॥
—नानकजी

'सुन्दर' सतगुरु यों कही , सकल सिरोमणि नाम ।
ताको निसिदिन सुमिरिये , सुखसागर सुखधाम ॥
—सुन्दरदासजी

मुखसों कहत राम नाम , पन्थ चलत जोई ।
पद-पदपर पावत नर , यज्ञ फलहिं सोई ॥
—तुकारामजी

राम-भजनमें एकसे , वर्ण चार नर-नार ।
जड़-मूरख भी हों तुरत , भवसागरसे पार ॥
—समर्थ रामदासजी

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

गताङ्कमें होली तक उपर्युक्त सोलह नामके दस करोड़ जप करने-करानेके लिये 'कल्याण' के प्रेमी पाठक-पाठिकाओंसे प्रार्थना की गयी थी। आनन्दकी बात है कि भगवन्नामके प्रेमी सज्जन और बहनोंने कार्य आरम्भ कर दिया है। हमारे पास स्थान स्थानसे सूचनाएं आ रही हैं। परन्तु अभी तक इस सम्बन्धमें जितना उद्योग होना चाहिये, उतना नहीं हुआ है। सम्भव है, कि आगामी अंक तक हमारे पास बहुत अधिक सूचना आ जाय, फिर भी हम अपने प्रेमी पाठक-पाठिकाओंसे सविनय निवेदन करते हैं कि वे इस महान् नाम-यज्ञमें उदारता और आनन्दके साथ खुद शामिल हों और दूसरोंको करावें। अभी बहुत समय बाकी है। इतने समयमें चेष्टा करनेसे बहुत कुछ हो सकता है। प्रत्येक हरिनाम-प्रेमी सज्जनको चाहिये कि घर-घर घूम-घूमकर नाम-जपके लिये प्रेम और विनयके साथ सब भाई-बहनोंसे प्रेरणा करे और जितने वचन मिलें, उतनी सूचना तुरन्त लिख भेजें। भगवान्‌का नाम-जप करने और करानेवाले दोनों ही धन्य हैं।

नामकी महिमा अपार है। सभी सन्त-महात्माओं-ने मुक्तकण्ठसे भगवन्नामके गुण गाये हैं। नामका महत्त्व वाणी या लेखनीसे प्रकट नहीं किया जा सकता। निष्काम भावसे जप करनेवाले सज्जनोंको नामसे जो कुछ अनुभव होता है उसको वही जानते हैं।

आशा है, कि 'कल्याण' के भक्त और कर्मी पाठक भगवन्नाम-प्रचारके दिव्य-कर्ममें अपना कुछ समय लगाकर स्वयं कृतार्थ होंगे और हम लोगोंको कृतज्ञ बनावेंगे।

नाम-जप-विभाग
'कल्याण' कार्यालय,
गोरखपुर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेरह आवश्यक बातें

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

(१) कमसे कम दोनों कालकी सन्ध्या ठीक समयपर करनी चाहिये, समयपर की हुई सन्ध्या बहुत ही लाभदायक होती है। स्मरण रखना चाहिये कि समयपर बोये हुए बीज ही उत्तम फलदायक हुआ करते हैं। ठीक कालपर सन्ध्या करनेवाले पुरुषके धर्म-तेजकी वृद्धि महर्षि जरत्कारुके समान हो सकती है।

(२) वेद और शास्त्रमें गायत्री मन्त्रके समान अन्य किसी भी मन्त्रका महत्त्व नहीं बतलाया गया, अतएव प्रत्येक यज्ञोपवीतधारी द्विजको शुद्ध होकर पवित्र स्थानमें शुद्ध आसनपर बैठकर अवकाशके अनुसार अधिकसे अधिक गायत्री मन्त्रका जप करना चाहिये। कमसे कम प्रातः और सायं १०८ मन्त्रोंकी एक एक मालाका जप तो अवश्य ही करना चाहिये।

(३) हरे राम हरे राम आदि षोडश नामके मन्त्रका जप सभी जातियोंके स्त्री-पुरुष सब समय कर सकते हैं। यह बहुत ही उपयोगी मन्त्र है। कलि-सन्तरण-उपनिषद्में इस मन्त्रका बहुत माहात्म्य बतलाया गया है।

(४) श्रीमद्भगवद्गीताका पठन और अध्ययन सबको करना चाहिये। बिना अर्थ समझे हुए भी गीताका पाठ बहुत लाभकारी है, परन्तु वास्तवमें बिना मतलब समझकर किये हुए अठारह अध्यायके मूल पाठकी अपेक्षा एक अध्यायका भी अर्थ समझकर पाठ करना श्रेष्ठ है; इसलिये प्रत्येक मनुष्यको यथासाध्य गीताके एक अध्यायका अर्थसहित पाठ तो अवश्य ही करना चाहिये।

(५) प्रत्येक मनुष्यको अपने घरमें अपनी भावनानुसार भगवान्‌की मूर्ति रखकर प्रेमके साथ प्रतिदिन उसकी पूजा करनी चाहिये। इससे भगवान्‌में श्रद्धा और प्रेमकी वृद्धि होती है, शुभ संस्कारोंका सञ्चय होता है और समयका सदुपयोग होता है।

(६) मनुष्यको प्रतिदिन (गीता अध्याय ६ श्लोक १०से १३के अनुसार) एकान्तमें बैठकर कमसे कम एक घण्टे अपनी रुचिके अनुसार साकार या निराकार भगवान्‌का ध्यान करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इससे पाप और विक्षेपोंका समूल नाश होता है और कल्याण-मार्गमें बहुत उन्नति होती है।

(७) प्रत्येक गृहस्थको प्रतिदिन बलिवैश्वदेव करके भोजन करना चाहिये क्योंकि गृहस्थाश्रममें नित्य होनेवाले पापोंके नाशके लिये जिन पञ्च महायज्ञोंका विधान है, वे इसके अन्तर्गत आ जाते हैं।

(८) मनुष्यको सब समय भगवान्‌के नाम और स्वरूपका स्मरण करते हुए ही अपने धर्मके अनुसार शरीर-निर्वाह और अन्य प्रकारकी चेष्टा करनी चाहिये (गीता ८। ७)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(९) परमात्मा सारे विश्वमें व्याप्त है, इसलिये सबकी सेवा ही परमात्माकी सेवा है; अतएव मनुष्यको परमसिद्धिकी प्राप्तिके लिये सम्पूर्ण जीवोंको उन्हें ईश्वररूप समझकर अपने न्याययुक्त कर्तव्य कर्मद्वारा सुख पहुंचानेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। गीता (१८ । ४६)

(१०) अपने द्वारपर आये हुए याचकको कुछ देनेकी शक्ति या किसी कारणवश इच्छा न होनेपर भी उसके साथ विनय, सत्कार और प्रेमका बर्ताव करना चाहिये।

(११) सम्पूर्ण जीव परमात्माका अंश होनेके कारण परमात्माके ही स्वरूप हैं, अतएव निन्दा, घृणा, द्वेष और हिंसाको त्यागकर सबके साथ निस्वार्थ भावसे विशुद्ध प्रेम बढ़ानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

(१२) धर्म और ईश्वरमें श्रद्धा तथा प्रेम रखनेवाले स्वार्थत्यागी, सदाचारी सत्पुरुषोंका सङ्गकर उनकी आज्ञा तथा अनुकूलताके अनुसार आचरण करते हुए संगका विशेष लाभ उठाना चाहिये।

(१३) भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और धर्मकी वृद्धिके लिये श्रुति-स्मृति आदि शास्त्रोंके पठन-पाठन और श्रवण-मननके द्वारा उनका तत्त्व समझकर अपनी आत्माको उन्नत बनाना चाहिये।

प्रश्न

एक छनहू कहँ दयाकी दीठि दान दैके,
मेरे दुख दारुण दुरित दहि दरिहौ ?
निज पद-कञ्ज-नखकोरकी किरण दैके,
घोर अन्धकार उर अन्तरको हरिहौ ?
कबहुँ कि 'राजहंस' करुणा-उदधि नाथ !
आपनो अभय हाथ मेरे माथ धरिहौ ?
सांची कहौ श्याम ! बार-बार बिनती है इती,
कबहूं कि मोहू कहँ दास निज करिहौ ?

—बलदेवप्रसाद मिश्र एम० ए०, एल-एल० बी०, एम० आर०, ए०-एस०

अनन्य शरणागति

आगम बेद पुरान बखानत, मारग कोटिन जाहिं न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपुको ईस कहावत सिद्ध सयाने॥
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप जोग बिराग लै जीव पराने।
को करि सोच मरै, तुलसी, हम जानकीनाथके हाथ बिकाने॥

—गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(पूर्वप्रकाशितसे आगे)

[मणि ८]

धिकारियोंका विचारः—सायङ्काल तथा प्रातःकाल अग्निहोत्रमें हवन करके दो आहुतियां दी जाती हैं। वे आहुतियां जलप्रधान दूध आदिका परिणाम होनेसे जलप्रधानरूप हैं। हवनके पीछे वे आहुतियां अग्निमेंसे सूक्ष्मरूपसे आकाशमें पहुँचती हैं। वे कर्म करनेवाले हमारे व्यापक जीवात्मासे युक्त हैं। शरीरके दाहकालमें स्वर्गकी प्राप्तिके लिये तीसरी आहुति दी जाती है। सायङ्काल, प्रातःकाल तथा अन्तकालमें दी हुई ये तीनों आहुतियां हम कर्मी पुरुषोंको लेकर प्रथम स्वर्गलोकरूप अग्निको प्राप्त करती हैं, वहां पुण्य-कर्मको भोगनेके बाद फिर हमको मेघरूप अग्निको प्राप्त करती हैं, फिर वृष्टिद्वारा पृथ्वीरूप तीसरे अग्निको प्राप्त करती हैं, फिर अन्नद्वारा पुरुषरूप चौथे अग्निको प्राप्त करती हैं और फिर पुरुषके वीर्य-सिञ्चनद्वारा स्त्री-रूप पांचवें अग्निको प्राप्त करती हैं। जीवके स्वर्ग-लोकसे मेघद्वारा भूमिलोकमें आनेका इसप्रकार भेद है:—पुण्य-पापयुक्त कोई भी जीव पुण्य-कर्मके उदयसे प्रथम स्वर्ग-सुखको भोगता है, फिर पुण्य-कर्मके क्षय होनेपर स्वर्गमेंसे नीचे गिरता है, फिर पाप-कर्मके उदयसे नरकके दुःखको भोगकर नरकमें-से भूमिलोकमें पड़ता है। गिरते समय जिस जिस प्रकार कर्म उदय होता है, उस कर्मके अनुसार पराधीनतावाला जीव अनेक प्रकारके जन्तुओंकी योनियोंको प्राप्त होता है। केवल पुण्य-कर्मके उदय-से पुण्यवान् जीव स्वर्गलोकमें सम्पूर्ण पुण्य-कर्मके फलको भोगकर नरकको प्राप्त न होकर वृष्टिद्वारा भूमिलोकको प्राप्त होता है। यह भूमिलोक ओषधियोंसे पूर्ण है। मनुष्य शरीरके कारणरूप पुण्य-पापसे युक्त हुआ तथा मूढ़ अवस्थाको प्राप्त हुआ पराधीन जीव अन्नके साथ एकरूप होकर फिर पुरुषके शरीरमें प्रवेश करता है। जैसे रज्जुसे बँधा हुआ घट कूपमें प्रवेश करता है इसीप्रकार कर्मरूप रज्जुसे बँधा हुआ जीव पिताके शरीरमें प्रवेश करता है। जैसे सांकलसे बँधे हुए शरीरवाले धन तथा बान्धवसे रहित चोरको राजाके मनुष्य बन्धनमें डालते हैं, ऐसे ही कर्मरूपी सांकलसे बँधे हुए तथा बान्धवोंसे रहित जीव इन्द्रियादि अभि-मानी देवताओंद्वारा पिताके शरीरको प्राप्त होता है। इस जीवको पिताका शरीर अन्धकूपके समान भयका कारणरूप प्रतीत होता है। सर्पके समान भय देनेवाला यह पिताका शरीर कृमि आदिसे युक्त है। जैसे धनके हरण करनेके कारण राजाके पुरुष लोगोंको सन्ताप देते हैं वैसे ही अन्नद्वारा पिताके उदरमें प्राप्त हुए जीवको पिताका जठराग्नि सन्ताप देता है। जैसे हिमपर्वतपर व्याघ्रग्रस्त बलहीन पुरुषको महान् वायु शोषण करता है, वैसे ही पिताके उदरमें स्थित जीवको पिताका प्राण-वायु शोषण करता है। यद्यपि पिताके शरीरमें यह जीव मूर्च्छित होता है, इसलिये दुःखका अनुभव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसको नहीं हो सकता तो भी वैराग्यकी उत्पत्तिके लिये दुःखका अनुभव कहा है। जैसे योनिद्वारा माताके गर्भमें यह जीव प्रवेश करता है, जैसे काम-से पीड़ित स्त्री गर्भ धारण करनेकी इच्छा करती है, वैसे ही क्षुधा-तृषासे पीड़ित पुरुष भी जीवयुक्त अन्नरूप गर्भको धारण करनेकी इच्छा करता है; इसलिये जैसे माताके उदरमें यह जीव गर्भ-भावको प्राप्त होता है वैसे ही पिताके शरीरमें भी गर्भ-भावको प्राप्त होता है।

शङ्का:—यदि स्त्रीके समान जीवरूप गर्भको पिता धारण करता हो तो जैसे स्त्रीके गर्भाधानमें पुरुषरूप पिता तथा उसका मैथुनरूप व्यापार कारणरूप होता है वैसे ही पुरुषके गर्भाधानमें भी पुरुषरूप पिता तथा उसका व्यापार कहना चाहिये।

समाधानः—अन्नद्वारा पुरुष-शरीरमें प्राप्त हुए जीवरूप गर्भका जो पिता है, वह मातारूप है, क्योंकि जो गर्भको धारण करता है, वह माता कहलाता है, इसलिये पिता मातारूप है और माया-विशिष्ट ईश्वररूप पुरुष पितारूप है। ईश्वरका तथा पिताका संयोग मैथुन-धर्मके समान गर्भका कारण-रूप है, इसलिये पिताके तथा माताके शरीरमें यह जीव समान गर्भभावको प्राप्त होता है। यह जीव माताके गर्भमें जितने दुःखका अनुभव करता है, उतने ही दुःखका पिताके उदरमें अनुभव करता है। प्रथम अन्नके साथ एकरूप होकर जीव पिताके मुखको प्राप्त होता है। वहां दांतोंसे उसके शरीरका भेदन होता है, मुखकी दुर्गन्धसे उसकी घ्राण-इन्द्रिय व्याप्त होती है। इसप्रकार पिताके मुखमें अनन्त दुःखोंका अनुभव करके फिर दुःखसे कण्ठको प्राप्त होता है। वहां अल्प मार्गवाले कण्ठ-छिद्रमें यह जीव कृमिके समान चेष्टा करता है और कफसे व्याप्त, व्याकुल-इन्द्रियोंवाला तथा शक्तिरहित होकर अतिशय दुःख-को प्राप्त होता है। इस प्रकार कण्ठमें रहकर यह जीव क्लेश भोगता है। जैसे गरुड़के मुखमें गयी हुई मछली तड़पती है और मुखसे निकलनेकी इच्छा भी करती है परन्तु निकल नहीं सकती वैसे ही कण्ठ-छिद्रमें अटकनेसे जीव अनन्त दुःखोंका अनुभव करता है। इसप्रकार कफके स्थान कण्ठ-देशमें यह जीव अनन्त दुःख पाता है। योनि-द्वारसे निकलनेमें जितना दुःख होता है, उतना ही दुःख कण्ठ-स्थानसे निकलनेमें होता है। पीछे यह हृदयमें स्थित पित्तको प्राप्त होता है। यह पित्त विष्ठाके समान आकारवाला है। जैसे किसी पुरुषकी खाल उतारकर उसको तपे हुए तेलमें डाल दिया जाय, तेलमें पड़नेसे जितना दुःख उस पुरुषको होता है, उतना ही दुःख यह जीव कफ-स्थानसे पित्त-स्थानको प्राप्त होनेमें पाता है। वहां हृदय-देशमें पित्तको प्राप्त होकर यह जीव अनन्त दुःख पाता है, यह पित्त प्राण-वायुसे मर्कटके समान चलायमान होता है तथा जठराग्निसे तपायमान होता है। इस पित्तको प्राप्त होकर यह जीव कभी नीचे जाता है, कभी ऊपर जाता है और कभी पित्तमें ही भ्रमण करता है। जैसे तपे हुए तेलमें डाला हुआ जल नीचे ऊपर भ्रमता है वैसे ही यह जीव पित्तमें भ्रमता है। इसप्रकार पित्ताशयमें अनन्त दुःखोंका अनुभव करके फिर यह जीव वातके आश्रयरूप वायुको प्राप्त होता है। यह वायु पुरीततिरूप कोटके मध्यमें रहता है। उसका निर्गमन बाहिरूप पर्वतमेंसे होता है। पुरीततिका अर्थ चान्द्र है। जैसे तृण वायुमें भ्रमता है वैसे ही यह वाताशयमें भ्रमता है। जैसे बढ़ई बसूलेसे लकड़ीका छेदन करता है वैसे ही प्राण-वायु अन्नमिश्रित जीवके सब अङ्गोंका छेदन करता है। इस छेदनसे जीवकी सब इन्द्रियां व्याकुल हो उठती हैं। यह वायु अग्नि-समान उष्ण स्पर्शवाला है, रूक्ष है तथा दुःखसे सहन करने योग्य है। इस प्रकार वाताशयमें रहकर बहुत कालतक दुःखका अनुभव करके यह जीव जठराग्निको प्राप्त होता है। जठराग्निमें अन्नमिलित इस जीवका पाक होता है। इस पाकसे प्रारब्ध कर्मके वशसे यह जीव मृत्युको नहीं प्राप्त होता। इस पाकसे अन्न उत्तम,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मध्यम और अधम भावको प्राप्त होता है। अन्नका उत्तम भाग मनभावको प्राप्त होता है, अधम भाग विष्ठा-भावको प्राप्त होता है और अन्नके मध्यम भागके साथ एक भावको प्राप्त हुआ, यह जीव, त्वचा, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, तथा मज्जा इन छ धातुओंको क्रमसे प्राप्त होता है। उनमें समान नामके वायुके बलसे पूर्व-पूर्व धातुको प्राप्त होकर फिर उत्तर उत्तर धातुको प्राप्त होता है। उनमेंसे एक-एक धातुके प्रवेशमें इस जीवको अनन्त दुःसह दुःख प्राप्त होते हैं। जब एक धातुके प्रवेशमें ही जीवको दुःसह अनन्त दुःखोंकी प्राप्ति होती है तो छै धातुओंके प्रवेशमें असंख्य दुःसह दुःख प्राप्त हों, इसमें कहना ही क्या है। उनमेंसे प्रथम त्वचाके प्रवेशमें जीवको निम्नलिखित दुःख होता है:—

यह जीव अन्नके मध्यभागके साथ एकरूप होकर नाड़ीद्वारा प्रथम त्वचाको प्राप्त होता है। ये नाड़ियां केशके अग्रभागके सौवें भागके समान सूक्ष्म हैं। इन सूक्ष्म नाड़ियोंकी संख्या बहत्तर हजार है। ये हृदय-स्थानमेंसे निकलती हैं, इन सूक्ष्म नाड़ियोंके मार्गसे जीव त्वचाको प्राप्त होता है। यह त्वचा सब शरीरमें व्यापक है, केश तथा रोमोंसे युक्त है। इन सूक्ष्म नाड़ियोंके प्रवेशमें-नाड़ियोंके मार्ग-गमनमें, नाड़ियोंमेंसे निकलनेमें तथा नाड़ियोंद्वारा त्वचाकी प्राप्तिमें जीवको जो जो दुःख होता है, वह स्मृतियोंमें प्रसिद्ध है। इस दुःखके वर्णन करनेमें भी हमको मोह होता है। इसप्रकार त्वचामें अनन्त दुःखोंका अनुभव करके त्वचामेंसे फिर रुधिररूप दूसरी धातुको जीव प्राप्त होता है। यह रुधिर रक्त वर्णवाला है। उसके देखनेसे पुरुषको भय और मोह होता है। इस रुधिरमें अनन्त दुःखोंका अनुभव करके फिर इस रुधिरमेंसे मांसरूप तृतीय धातुको जीव प्राप्त होता है। यह मांस अति सघन और शालमली वृक्षके समान रंगवाला है। इस मांसको प्राप्त हुआ जीव कुछ कालतक मूर्छाको प्राप्त होता है। मांसमेंसे गिरकर यह जीव अग्नि तथा प्राण-वायुद्वारा चलायमान होता हुआ मेदरूपी चौथी धातुको प्राप्त होता है। जैसे अग्निसे ताया हुआ घी चूर्णमें प्रवेश करता है वैसे ही यह जीव मेदमें प्रवेश करता है। यह मेद गेहूँके आटेके समान शुक्ल रंगका होता है। इस मेदमें अनन्त दुःखोंका अनुभव करके फिर जीव मेदमेंसे अस्थि-रूप पांचवीं धातुको प्राप्त होता है। जैसे मिट्टी लकड़ीमें चिपट जाती है, इसीप्रकार पुरुषके गर्भमें रहा हुआ यह जीव अस्थिको प्राप्त होता है। ये अस्थियां शरीररूप घरकी स्थाणुरूप हैं, इनकी संख्या शास्त्रमें तीनसौ साठ कही गयी है। इन अस्थियोंमें अनन्त दुःखोंका भोग करके धीरे धीरे यह जीव अस्थिमेंसे मज्जारूप छठी धातुको प्राप्त होता है। जैसे लकड़ियोंमें रहा हुआ जल धीरे धीरे लकड़ियोंमें प्रवेश कर जाता है वैसे ही यह जीव मज्जामें प्रवेश करता है। यह मज्जा अस्थियोंके अन्दर रहती है और साररूप वीर्यसे युक्त है। इस प्रकार मज्जाका साररूप हुआ यह जीव कुछ समय तक स्थित रहता है। फिर स्त्री-सम्बन्धरूप निमित्तसे जब पिताके मनमें कामरूप अग्नि उत्पन्न होता है तब सम्पूर्ण शरीरमेंसे मज्जा वीर्यरूप सारको परित्याग करता है। जैसे अग्निके सम्बन्धसे घी पिघल जाता है वैसे ही कामाग्निसे सिरसे लेकर पैरतकके सब अङ्गोंमेंसे मज्जाका सार निकलता है। इस मज्जाके साररूप वीर्यको पिता सहन नहीं कर सकता, इस बातको चार दृष्टान्तोंसे दिखाते हैं। जैसे दशवें मासमें प्रसवकालमें यह गर्भ दुःखसे सहन होता है वैसे ही कामाग्निके उत्पन्न होनेसे पिताको यह वीर्यरूप गर्भ दुःखसे सहन होता है। जैसे गीला वृक्ष अपनी गुफामें अग्निको सह नहीं सकता वैसे ही पिता भी वीर्यरूप गर्भको उससमय सह नहीं सकता। किसी पुरुषने शत्रुके नाशके लिये श्यन-यज्ञ किया, उस यज्ञ-कर्मसे जैसे शत्रुका मन स्थिर नहीं रहता वैसे ही कामाग्निके तापसे पिताका वीर्य स्थिर नहीं रहता। जिसप्रकार पारा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देहमें नहीं ठहरता उसीप्रकार कामाग्निसे द्रवीभाव-को प्राप्त हुआ मज्जाका साररूप वीर्य भी देहमें नहीं ठहर सकता। यद्यपि माताके उदरमेंसे प्रसूतिका कारणरूप वायु गर्भको बाहर निकालता है और कामाग्नि पिताके शरीरमेंसे वीर्य रूप गर्भको चलायमान करता है, इसलिये दोनोंकी समानता नहीं हो सकती, तो भी, माताके शरीरमें जैसे यह जीव गर्भरूपसे स्थित होता है इसी प्रकार पिताके शरीरमें भी गर्भरूपसे स्थित होता है। जिस प्रकार प्रसव-कालमें यह गर्भ माताको व्यामोह करता है उसी प्रकार पिताको भी यह वीर्यरूप गर्भ व्यामोह करता है; इसलिये दोनोंमें जीवकी गर्भरूपता समान है। अन्य वस्तुमें अन्य बुद्धिका नाम व्यामोह है। वीर्यरूप गर्भके निकलते समय पिताको व्यामोह होता है। जैसे कफदोषसे कटु वस्तु मधुर भासने लगती है वैसे ही कामाग्निरूप दोषके उत्पन्न होनेसे कामी पुरुषको दुःखरूप स्त्रीका शरीर भी सुखरूप प्रतीत होता है। दुर्गन्ध-जलसे युक्त स्त्रीका मुख यद्यपि विचार करनेसे ग्लानिका कारण है तो भी कामदोषसे कामी पुरुषको चन्द्रमाके समान सुखका साधन प्रतीत होता है। मलसे युक्त स्त्रीके नेत्र यद्यपि विचार करनेसे ग्लानि उत्पन्न करनेवाले हैं, तो भी काम-दोषसे कामी पुरुषको कमलके समान रमणीय प्रतीत होते हैं। स्त्रीके नेत्रका कटाक्ष विषयुक्त बाणके समान सम्पूर्ण नरकोंका कारणरूप ही है, तो भी कामदोषसे कामी पुरुषको पुष्पके समान सुखद प्रतीत होता है। श्लेष्मके निकलनेका मार्ग होनेसे स्त्रीकी नासिका यद्यपि विचार करनेसे ग्लानिका ही कारणरूप है, तो भी कामदोषसे कामी पुरुषको दूधके समान मधुर प्रतीत होती है। पायु-इन्द्रियके समान स्त्रीका अधर भी अवश्य ही ग्लानिजनक है, तो भी कामी पुरुषको कामके दोषसे अमृतके समान विचित्र सुखकर प्रतीत होता है। अन्धकारके समान स्त्रीके श्याम केश यद्यपि नेत्रकी शक्तिको हरण करनेवाले हैं, तो भी कामदोषसे कामी पुरुषके नेत्रोंमें हर्ष उत्पन्न करते हैं। मांसकी ग्रन्थिरूप स्त्रीके स्तन यद्यपि विचार करनेसे ग्लानिके कारण हैं तो भी कामदोषसे कामी पुरुषको अमृतसे भरे हुए स्वर्ण-कलशके समान मनोहर प्रतीत होते हैं। अधिक मांससे युक्त स्त्रीका उदर अथवा मांसरहित उदर शूकर तथा श्वानके उदर-समान विष्ठा-मूत्रका स्थान यद्यपि विचार करनेसे घृणाजनक है तो भी कामग्रहसे पीड़ित कामी पुरुषको आनन्दका कारण प्रतीत होता है। पायु-नदीके तीररूप स्त्रीके (विष्ठामूत्रसे भरे हुए) नितम्ब विचार करनेसे ग्लानिकारक ही सिद्ध होते हैं, तो भी कामदोषसे कामी पुरुषको रमणीय प्रतीत होते हैं। भगंदर रोगके समान मूत्र-गन्धसे दूषित स्त्रीकी योनि यद्यपि विचार करनेसे ग्लानिका कारणरूप है तो भी कामदोषसे कामी पुरुषको स्वर्गके समान सुखप्रद प्रतीत होती है। उरुसे लेकर पग पर्यन्त मांसयुक्त अस्थिरूप स्त्रीकी जंघाएँ यद्यपि विचार करनेसे ग्लानि उत्पन्न करती हैं, तो भी कामदोषसे कामी पुरुषको केलेके स्तम्भ-समान रमणीय प्रतीत होती हैं। कामदोषके कारण कामी पुरुषको जैसे स्त्री अमृत समान प्रतीत होती है वैसे ही कामदोषके बलसे स्त्रीको पुरुष भी अमृत-समान प्रतीत होता है। यहां सार यह है कि कितने ही दिखाये हुए दोष कार्यको रोकनेवाले हैं; जैसे— नेत्रमें स्थित पित्त-दोष शंखमें श्वेत ज्ञानरूप कार्यका प्रतिबन्धक है। और कई दोष विपरीत कार्यके उत्पादक हैं:—जैसे अग्निसे जला हुआ वेत्र-बीज कदलीका आरम्भ करता है अथवा जैसे भसक रोगसे दूषित जठराग्नि घने अन्नको पचाता है, इसीप्रकार कामरूप दोष भी विपरीत कार्यका आरम्भक तथा प्रतिबन्धक है।

ज्ञानेन्द्रिय-शक्तिकी कामदोषमें प्रतिबन्धकताः—जब कामी पुरुषके कामाग्निजन्य वीर्यरूप गर्भका क्षोभ होता है तब कामी पुरुष शास्त्र प्रमाणसे धर्म

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा अधर्मको भूल जाता है, रात-दिनको भी भूल जाता है, अपने-परायेकी उसको खबर नहीं रहती, सुहृद् तथा मित्रको नहीं पहिचानता, स्त्रीके अङ्गोंमें नेत्रोंसे दोष देखता हुआ भी कामी पुरुष कामदोषके बलसे अन्धेके समान नहीं देखता। इसीप्रकार दोषोंको सुनता हुआ भी कामी पुरुष बहिरेके समान नहीं सुनता। घ्राण-इन्द्रियसे दुर्गन्धको सूंघता हुआ भी कामी पुरुष घ्राण-दूषित पुरुषके समान नहीं सूंघता। रसनेन्द्रियसे रसका अनुभव करता हुआ भी रसनारहित पुरुषके समान अनुभव नहीं करता। त्वक्-इन्द्रियसे स्पर्श करता हुआ भी यह कामी पुरुष त्वक्-इन्द्रिय-रहित पुरुषके समान स्पर्श नहीं करता।

कर्मेन्द्रिय-शक्तिकी प्रतिबन्धकताः—काम-दोषके बलसे परिडत भी जड़ पुरुषके समान भाषण करता है। कामी पुरुष हस्त-इन्द्रियवाला होकर भी टोंटेके समान वस्तुको ग्रहण करता है। कामी पुरुष पाद-इन्द्रियवाला होकर भी पंगुके समान गमन करता है। मलके त्यागकी इच्छा उत्पन्न करनेवाले कारणोंके होनेपर भी रोगरहित कामी पुरुष मलका त्याग नहीं करता अथवा मलका परित्याग करता हुआ भी परित्याग नहीं करता यानी शरीरके मल-दर्शनका फल शरीरमें वैराग्यकी उत्पत्तिरूप है। जब शरीरके मल-दर्शनसे भी वैराग्य नहीं होता तो त्याग करते हुए भी त्याग न करनेके समान है।

काम-दोषमें बल-ऐश्वर्य आदि प्रभुताकी प्रतिबन्धकताः—कामी पुरुष बलवाला होकर भी बलरहित, ऐश्वर्यवाला होकर भी दरिद्र और प्रभुतावाला राजा होकर भी रङ्कके समान प्रतीत होता है।

काम-दोषमें चतुष्टय अन्तःकरणकी प्रतिबन्धकताः—कामी पुरुष बुद्धिमान् होकर भी मूढ़ प्रतीत होता है, मनसहित होकर भी मनरहित प्रतीत होता है, अहङ्कारवाला होकर भी अहङ्काररहित प्रतीत होता है और चित्तकी विद्यमानता होनेपर भी चित्तरहित प्रतीत होता है। इस प्रकार कामरूप ज्वरके वश हुए वीर्यरूप गर्भको धारण करनेवाले कामी पुरुषकी विवेकी पुरुष निन्दा करते हुए उनकी अवस्थापर पश्चात्ताप करते हैं।

शङ्काः—काम-दोष स्त्रीसे भिन्न अन्य पदार्थोंमें सर्व इन्द्रियोंके व्यापारकी प्रतिबन्धकता क्यों करता है?

समाधानः—कूटस्थ आत्माको मोहरूप पाशमें बाँधकर महामोह स्वतन्त्र राज्य करनेकी इच्छा करता है। यह महामोह विवेकसे भयको प्राप्त होकर कामको अपना प्रधान मन्त्री बनाता है। काम अपने प्रभु महामोहसे इस प्रकार कहता है—'हे प्रभो! आप विवेकसे किञ्चित् भी भय न कीजिये, क्योंकि जिस पुरुषमें विवेक उत्पन्न होनेकी आशा है, उस पुरुषके शरीरको मैं सर्व इन्द्रियसहित निन्दित स्त्री-शरीरमें प्रवृत्त करूंगा!' महामोहके सामने इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करके, इस प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये दूसरे स्थलोंमेंसे सर्व इन्द्रियोंके व्यापारको हटाकर काम स्त्रीमें ही सर्व इन्द्रियोंके व्यापारको पुरुषसे कराता है। इस अभिप्रायसे कामी पुरुषकी सर्व इन्द्रियोंका व्यापार स्त्रीमें दिखाया है। कामी पुरुष कामकी उत्पत्तिके समय नेत्रोंसे स्त्रीको ही देखता है, एकाग्र मनवाला कामी पुरुष श्रोत्र-इन्द्रियसे स्त्रीका ही श्रवण करता है, घ्राण-इन्द्रियसे स्त्रीको ही सूंघता है, रसनेन्द्रियसे बारम्बार स्त्रीका ही स्वाद लेता है और त्वक् इन्द्रियसे आदरपूर्वक सब अङ्गोंसे स्त्रीका ही स्पर्श करता है। कामी पुरुष वाक्-इन्द्रियसे स्त्रीको ही सुखका कारणरूप कहता है, हस्त-इन्द्रियसे बारम्बार स्त्रीका ही ग्रहण करता है, पाद-इन्द्रियसे देव अथवा गुरुके समान स्त्रीके समीप ही गमन करता है। कामी पुरुष पायु-इन्द्रियसे मल-परित्याग-रूप व्यापारमें प्रवृत्त होना चाहता है, परन्तु पायु-इन्द्रियका व्यापार स्त्रीमें हो नहीं सकता इसलिये विचारा इस व्यापारसे निवृत्त होता है; यह कामी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुषका उपहास्य है। जिस प्रकार विवेकी पुरुष मनसे इष्टदेवताका स्मरण करता है, उसी प्रकार कामी पुरुष मनसे स्त्रीका ही स्मरण करता है। जैसे योगी पुरुष बुद्धिसे आत्माका निश्चय करता है वैसे ही कामी पुरुष बुद्धिसे स्त्रीका निश्चय करता है। जैसे शुद्ध बुद्धिवाला विवेकी पुरुष चित्तसे रात दिन विष्णुका चिन्तवन करता है, वैसे ही कामी पुरुष रात-दिन चित्तसे स्त्रीका ही चिन्तवन किया करता है। कामी पुरुष काम-दोषके बलसे स्त्रीको ही आत्मारूप मानता है। स्त्रीसे ताड़न किया हुआ भी स्त्रीको अधिक मानता है।

स्त्रीके दोषः— जैसे मदारी मर्कटको नचाता है वैसे ही स्वाधीन हुए कामी पुरुषको स्त्री नचाती है यानी अपने अभिप्रायके अनुसार सब काम कराती है। स्त्रीका स्वभाव अव्यवस्थित होता है। कभी स्त्री अनेक प्रकारकी सेवासे पुरुषका सम्मान करती है, कभी तीक्ष्ण बाण-समान वचनोंसे पुरुषका निरादर करती है। कभी स्त्री अपने पतिसे कहती है–'हे नाथ! आप मुझे देहसे तथा प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हैं!' कभी कहती है–'तू किसका पति है? मैं तुझे देख भी नहीं सकती!' कभी स्त्री पतिके साथ प्रेमपूर्वक भाषण करती है,और कभी बोलती भी नहीं। कभी स्त्री पतिसे धनकी याचना करती है, कभी स्वयं पतिको धन देती है। कभी स्त्री परपतिमें आसक्त होकर अपने पतिका नाश करती है, कभी अन्य पुरुषसे अपने पतिका नाश कराती है। साधु स्वभाववाली स्त्री भी कभी कभी अपना अनिष्ट करनेवाले अन्य पुरुषका अपने पति तथा भाई आदिसे नाश कराती है; व्यभिचारिणी स्त्री स्नेह रहित होकर अपने पति, पुत्र तथा पिता आदिका अन्य बलवान् पुरुषसे नाश कराती है। कभी स्त्री शिष्ट पुरुषोंकी सभामें साधु पुरुषको भी मिथ्या वचनोंसे उपहास्यके योग्य बनाती है। कभी स्त्री अपना स्वल्प कार्य साधनेके लिये पिताका, भ्राताका, पुत्रका तथा विद्या-सम्पन्न ब्राह्मणका नाश कराती है, यह बात सर्वलोकमें प्रसिद्ध है। इस प्रकार की स्त्रीमें आसक्त हुए पुरुषको इस जन्ममें अवश्य दुःख प्राप्त होता है और परलोकमें नरक भोगना पड़ता है। इसलिये कौन विवेकी पुरुष स्त्रीमें आसक्त होगा? मूढ़ पुरुषोंकी ही स्त्रीमें आसक्ति होती है। तात्पर्य यह है कि राजा आदि तो स्नेहसे रहित होकर पुरुषका नाश करते हैं तथा डाकिनी स्नेहयुक्त होकर नाश करती है, किन्तु स्त्री तो स्नेहयुक्त तथा स्नेहसे रहित दोनों प्रकारसे पुरुषका नाश करती है। स्त्रियां दो प्रकारकी होती हैं, एक अपनी और दूसरी दूसरेकी। उनमेंसे स्नेहयुक्त अपनी स्त्री पतिको अन्य स्त्रीके समीप जाता हुआ देखकर क्रोधयुक्त होकर विष देकर अथवा अन्य किसी मन्त्रद्वारा उसका नाश करती ह। जब परस्त्री अन्य पुरुषमें स्नेहयुक्त होती है तब वह किसी निमित्तसे क्रोधयुक्त होकर पर-पुरुषका अपने पिता अथवा भाईद्वारा नाश कराती है। इस प्रकार अपनी स्त्री तथा परस्त्री पुरुषमें स्नेहयुक्त होकर दोनों लोकोंमें भयका कारण है। जब अपनी स्त्री पतिमें स्नेहरहित होती है तब वह स्त्री एकान्त स्थलमें कामज्वरसे पीड़ित पुरुषका कठोर वचनोंसे ताड़न करती है तथा पतिके पास भी नहीं जाती अथवा किसी बहानेसे वह कामातुर पुरुषका परित्याग करके अन्य पुरुषके समीप गमन करती है। जब स्त्रीके परपुरुष-प्रेमको पति जान जाता है तो वह स्त्री यदि बलवती होती है तो रात्रिमें स्वयं ही पतिका नाश कर देती है और यदि बलहीन होती है तो अन्य पुरुषसे उसका वध करवा देती है। यदि परस्त्री अन्यमें स्नेहरहित होती है तो वह स्त्री तत्काल उस पुरुषके मरणका हेतु होती है। 'एकान्त स्थलमें यह पुरुष मुझसे याचना करता था' इस प्रकार अपने सम्बन्धियोंसे कहकर उस पुरुषका नाश करा देती है। इस प्रकार अपनी तथा दूसरेकी स्त्रीमें अनन्त प्रकारके दोष

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं। इन दोषोंका कामी पुरुष सर्वदा अनुभव करते हैं। जिसप्रकार कामी पुरुषके दुःखका कारण स्त्री है उसी प्रकार कामयुक्त स्त्रीके दुःखका कारण भी पुरुष है। इससे यह सिद्ध होता है कि काम ही सब दुःखोंका कारण है, स्त्री तथा पुरुष नहीं। यदि स्त्री ही पुरुषके दुःखका कारण हो तो कामरहित स्त्री भी पुरुषके दुःखका कारण होनी चाहिये किन्तु प्रायः देखा जाता है कि कामरहित स्त्री पुरुषके दुःखका कारण नहीं होती। यदि पुरुष ही स्त्रीके दुःखका कारण हो तो कामरहित पुरुष भी दुःखका कारण होना चाहिये परन्तु कामरहित पुरुष स्त्रीके दुःखका कारण नहीं होता; इसलिये कामकी उत्पत्तिसे दुःखकी उत्पत्ति और कामके अभावमें दुःखका अभाव है। इसप्रकार अन्वय-व्यतिरेक करके काममें ही सब दुःखोंकी कारणता है। इसलिये दुःखके कारणरूप कामको भयङ्कर शत्रु जानकर बुद्धिमान् पुरुषको इससे बचना चाहिये। इस सम्बन्धमें विद्वान् पुरुषोंका यह अनुभव है:—'काम किङ्करतां प्राप्य जनो नो कस्य किङ्करः। एकं कामं परित्यज्य जनोऽसौ कस्य किङ्करः॥' अर्थः—एक कामके अधीन होकर पुरुष सबका दास होता है। जो केवल कामका परित्याग करता है, वह किसीका दास नहीं होता।

कामका मूल तथा उसकी निवृत्तिका उपायः—'यह नारी रमणीय है' ऐसी बुद्धिसे कामकी उत्पत्ति होती है। रमणीय बुद्धि एवं सौन्दर्यादि गुण बुद्धिसे उत्पन्न होते हैं; इसलिये गुण-बुद्धि रमणीय-बुद्धि-द्वारा कामका कारणरूप है। गुण-बुद्धिके नाश बिना कामका नाश नहीं होता। स्त्रीमें पूर्वोक्त दोषके ज्ञानसे गुण-बुद्धिका नाश होता है। दोष-दर्शनसे गुण-बुद्धिके कारण रूप मोहका नाश होता है। यह मोह ही प्राणियोंको बन्धनमें डालनेवाला है। सुन्दरतारहित नारी आदिमें सुन्दरता-बुद्धिका कारण भी मोह है यानी आवरणशक्ति तथा विक्षेप-शक्तियुक्त मोह अति विस्तारवाले कामरूप वृक्षका बीज है; इसलिये मोहके नष्ट होनेसे काम आप ही नष्ट हो जाता है। जैसे मूलके नाश होनेसे वृक्षका नाश हो जाता है वैसे ही मोहके नाश होनेसे इच्छा-रूप कामका नाश हो जाता है और कामके नाश होनेसे क्रोध भी उसी समय नष्ट हो जाता है। क्योंकि इच्छारूप कामका जब कोई पुरुष निरोध करता है तब वह इच्छारूप काम ही द्वेषरूप क्रोधाकार परिणामको प्राप्त होता है। जो पुरुष इच्छासे रहित है, उसको किसी भी कारणसे क्रोध उत्पन्न नहीं होता। काम तथा क्रोधकी निवृत्तिका फल यह है:—'विवेकवह्निनादग्धे कामक्रोधे समूलके। संसारे भगवानेष आनन्दात्मा प्रसीदति॥' अर्थः—महा-वाक्यजन्य आत्मज्ञानरूप अग्निसे मूल अज्ञान-सहित काम-क्रोधका नाश होनेसे इस शरीरमें महावाक्यके अर्थरूप आनन्दात्माका प्रादुर्भाव होता है। स्मृतिका भी वचन है:—'काम जानामि ते मूलं संकल्पात्किल जायसे। संकल्पे तु मया त्यक्ते कथं त्वं मयि जायसे॥' अर्थः—हे काम! मैं तेरा मूल जानता हूं, संकल्पसे तू उत्पन्न होता है। संकल्पको जब मैं त्याग दूंगा तब तू मुझमें किस प्रकार उत्पन्न होगा? यानी किसी प्रकार भी तेरी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। इसप्रकार काममें सब अनर्थोंके मूलको तथा कामकी निवृत्तिके उपायको कामी पुरुष नहीं जानता। वीर्यरूप गर्भसे युक्त, कामरूप ग्रहसे व्याकुल तथा उपस्थरूप सर्पसे डसा हुआ कामी पुरुष उस समय यह नहीं जानता कि काम मेरे दुःखका कारण है और कामरूप ग्रहके आक्रमणसे तथा उपस्थरूप सर्पके डसनेसे कामी पुरुष वीर्यरूप गर्भसे क्षीण होकर उसको त्यागनेकी इच्छा करता है। यह वीर्य शरीरका सारभूत है। इस वीर्य-गर्भको जब कामी पुरुष सहन नहीं कर सकता तब स्त्रीमें उसका परित्याग करता है। इसप्रकार पिताका स्वरूप जो वीर्यरूप गर्भ है, वह स्त्रीकी योनिको प्राप्त होता है। जैसे भारसे दुखी हुआ पुरुष भारको त्यागनेसे सुखी होता है ऐसे ही वीर्य-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूप गर्भके त्यागसे गर्भी पुरुष सुखको प्राप्त होता है। जैसे पिशाचादि ग्रहसे आविष्ट हुआ पुरुष दुःखको प्राप्त होता है और ग्रहके निवृत्त होनेसे सुखी होता है वैसे ही गर्भी पुरुष वीर्यरूप गर्भके त्यागसे सुखी होता है।

वीर्यके निकलनेसे सुखकी प्राप्ति लौकिक दृष्टिसे कही है, विचार-दृष्टिसे तो वीर्यके निर्गमनसे पुरुषकी महान् हानि होती है। जिस प्रकार अजीर्ण भावको प्राप्त हुआ अन्न प्राणान्त दुःखको उत्पन्न करके निकलता है उसी प्रकार वीर्य भी प्राणान्त दुःखको उत्पन्न करके निकलता है। जैसे अजीर्ण अन्नका निर्गमन पुरुषके बलका नाश करनेवाला है वैसे ही वीर्यका निर्गमन भी पुरुषके बलको नष्ट करता है। जैसे अतिसार रोग पुरुषके सर्व तेजको नष्ट कर देता है उसी प्रकार वीर्यका निर्गमन भी पुरुषके सर्व बलका नाश करता है। इसलिये वीर्यके निर्गमनसे पुरुषकी महान् हानि होती है और वीर्यके निरोधसे पुरुषको महान् फलकी प्राप्ति होती है क्योंकि पुरुषसे निरोध किया हुआ वीर्यरूप सातवीं धातु ओज नामकी आठवीं दशाको प्राप्त होता है। योगवाशिष्ठमें हृदयमें स्थित पीतवर्णवाले जीवके निवास-स्थानको ओज कहा है। ओज नामकी दशासे तेजयुक्त हुआ यह जीव जीता है। वीर्यका निरोध करनेसे पुरुषको विरूप करनेवाली जरा अवस्था जल्दी नहीं दबा सकती और मृत्यु भी सहसा अपना बल नहीं दिखा सकती। वीर्यके निरोध करनेवाले ब्रह्मचारी पुरुषको परलोकमें ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है और इस लोकमें उसकी महान् कीर्ति होती है। इस प्रकार वीर्यके निरोधसे ही ब्रह्मचारीके दोनों लोक सिद्ध होते हैं और वीर्यके परित्यागसे ही कामी पुरुष दोनों लोकोंसे भ्रष्ट होता है। वीर्यके निरोधसे योगी पुरुष आकाशमें गमन करनेको समर्थ होते हैं और अणिमादि अष्ट सिद्धियोंको प्राप्त करते हैं। इस प्रकार वीर्यका निरोध महान् फलका हेतु है और वीर्यका त्याग अनर्थका हेतु है। जैसे ईखको कोल्हूमें पेलनेसे उसकी त्वचा निस्सार हो जाती है इसी प्रकार कामी पुरुष भी स्त्रीकी भुजाके पीड़नसे साररूप वीर्यसे रहित हो जाता है। जो वीर्य आयु तथा बलकी वृद्धि करनेवाला है, वही कामरूप अग्निसे सर्व अङ्गोंमेंसे निकल जानेसे पुरुष बलहीन हो जाता है। अज्ञानसे आवृत हुआ कामी पुरुष इस वीर्यका स्त्रीमें परित्याग करता है। इस प्रकार स्त्रीके योनि-स्थानमें प्राप्त हुए जीवमिलित वीर्यका पुरुष-शरीरमेंसे निर्गमनरूप प्रथम जन्म कहा। योनिमें प्राप्त हुआ यह जीव अनेक प्रकारकी हजारों अवस्थाओंको प्राप्त होता है। यह एक एक अवस्था हजारों दुःख तथा शोकसे व्याप्त है। गर्भोपनिषद्में इन अवस्थाओंका विस्तारसे निरूपण किया गया है। वीर्यरूप गर्भको धारण करनेवाला पुरुष गर्भरूपसे स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है। इसलिये पुरुषके वीर्यरूप गर्भको धारण करनेवाली स्त्रीकी पुरुषको सब प्रकारसे रक्षा करनी चाहिये। रक्षाका प्रकार यह है:—गर्भिणी स्त्रीकी वस्त्रसे, अन्नसे, धनसे पुरुषको रक्षा करनी चाहिये। चौथे मासमें हृदयमें गर्भ स्थित होता है, उस कालमें जिस जिस पदार्थमें स्त्रीकी अभिलाषा हो, उस उस पदार्थको देकर स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये। उस पदार्थके न देनेसे सुश्रुत ग्रन्थमें बालकको दुःखकी प्राप्ति कही है। यदि चौथे मासमें चक्षु-इन्द्रियके विषय रूपादि पदार्थोंकी इच्छा हो और उन पदार्थोंकी प्राप्ति न हो तो बालकके चक्षु-इन्द्रियमें पीड़ा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार रसनेन्द्रियके विषयरूप रसादिकी यदि स्त्रीको इच्छा हो और उस रसकी प्राप्ति न हो तो बालककी रसन-इन्द्रियमें पीड़ा उत्पन्न होती है। इस प्रकार जिस जिस इन्द्रियका विषय गर्भिणीको प्राप्त नहीं होता, बालककी उस उस इन्द्रियमें पीड़ा होती है। इसलिये सर्व इन्द्रियोंके विषयकी प्राप्तिसे पुरुषको स्त्रीकी रक्षा करनी योग्य है। अनेक प्रकारके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रथादिसे, आसन-स्नानादिसे स्त्रीकी रक्षा करना चाहिये। घरके व्यापारकी निवृत्तिसे भी स्त्रीकी रक्षा करना योग्य है। इसीप्रकार ओषधि-सेवन तथा अपथ्यकी निवृत्तिरूप रक्षा करके पुरुषको स्त्रीका पालन करना उचित है। क्योंकि लोकमें यह मर्यादा प्रसिद्ध है कि जो पुरुष उपकार करता है उसपर दुर्जन पुरुष भी उपकार करता है। पुरुषके दुःखका कारण वीर्यरूप गर्भ स्त्रीने अपनेमें धारण किया है इसलिये कृतघ्नता-दोषकी निवृत्तिके लिये पुरुषको सर्व प्रकारसे स्त्रीकी रक्षा करना योग्य है। वीर्यरूप गर्भविशिष्ट पुरुष गर्भरूपसे स्त्रीमें प्रवेश करता है और फिर नवीन होकर स्त्रीसे उत्पन्न होता है, इस कारणसे स्त्री पुरुषकी जननीरूप है, इसलिये भी उसकी रक्षा करना योग्य है। गर्भाधानसे लेकर जहांतक योनि-मेंसे जीवका निर्गमन होता है वहांतक स्त्रीके रजके साथ तादात्म्यभावको प्राप्त हुए पुरुषके अंशको स्त्री अपने शरीरके समान धारण करती है, इसलिये भी पुरुषको स्त्रीकी रक्षा करना उचित है। यहांतक पुरुषके शरीरमें प्रवेशरूप प्रथम गर्भरूपसे जीवको दुःखकी प्राप्ति कही।

(क्रमशः)

ललित-लीला

आप ही हैं दृश्य और आप ही हैं दिव्य-दृष्टि
तोभी हम आपसे ही आपको दिखायँगे।
आप ही हैं गानेवाले आप ही हैं स्वर, ताल—
तोभी हम गुण-गान आपको सुनायँगे॥
आप ही पुजारी और आपही हैं पूज्य-देव
तोभी हम आप पर पुष्पोंको चढ़ायँगे।
आप ही हमारे प्राण, प्राणोंके भी प्राण, तोभी—
प्राणोंकी बाजी हम आप पर लगायँगे॥१॥

वेदरूपी वाणीने भी खोला नहीं भेद पूरा
आपका स्वरूप नहीं किसीने बताया है।
बार-बार भूल जाता आपको क्यों जीव तब
आपसे ही आया जब आपमें समाया है॥
मिलता जुलता न क्यों आपसे संसार यह—
बन करके आपकी ही कायाकी छाया है।
वाह ! वाह ! मायानाथ ! नित्य महामायाको भी—
मायामें फँसानेको आपकी ही माया है॥२॥

कुमार प्रतापनारायण 'कविरत्न'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामकृष्ण परमहंस

(लेखक—स्वामीजी श्रीचिदात्मानन्दजी)

(गताङ्कसे आगे)

श्रीरामकृष्ण अब राधा-गोविन्दके मन्दिरमें पुजारीका काम करने लगे। अन्य ब्राह्मणोंकी भांति जातिका अभिमान उन्हें छूतक न गया था, इसीलिये प्रचलित जाति-व्यवस्थाके विरुद्ध वह शूद्रके देवालयमें भगवत्-सेवाके कार्यमें लग गये। देवालयकी अधिकारिणी रानी राशमणि बड़ी श्रद्धालु और भक्त महिला थीं। यद्यपि जातिकी शूद्रा थीं, परन्तु उदारचित्त, कोमल-हृदय और भगवती कालीमें अनन्यभावसे अनुरक्ता थीं। ऐसी सुयोग्य देवीस्वरूपा महिलाके मन्दिरका जाति-अभिमानके कारण निरादर करना रामकृष्ण जैसे विशाल-हृदय पुरुषके लिये असम्भव था। जो समस्त जगत्को परमेश्वरका ही रूप समझे, उसके हृदयमें इसप्रकारके क्षुद्रभाव कैसे स्थान पा सकते हैं? महान् आत्माओंके भाव भी महान् होते हैं। राम और कृष्णसे लेकर कबीर नानक तुलसीदास सूरदास आदि महापुरुषोंने जगत्के माया-मोहसे ग्रसित मनुष्योंके कल्याणार्थ अपने आदर्श जीवन तथा सार्वभौम उपदेशोंसे यह सिद्ध कर दिया है कि "जात पांत पूछे ना कोय। हरिको भजे सो हरिका होय।" जो लोग जाति-अभिमानके नशेमें मतवाले होकर निम्नश्रेणीके लोगोंको घृणा-दृष्टिसे देखते हैं वे वास्तवमें धर्मके तत्त्वसे अनभिज्ञ हैं। घृणा, द्वेष और अभिमान जीवके महान् शत्रु हैं। ये प्राणीको परमार्थ-साधनमें अग्रसर होने ही नहीं देते। जिन महानुभावोंके हृदयसे इन दुष्ट भावोंका सर्वथा बहिष्कार हो चुका है वही सत्य-धर्मके अधिकारी कहे जा सकते हैं। जाति-व्यवस्था समाजको नियमबद्ध रखने तथा परस्पर शान्ति-स्थापन करनेके अभिप्रायसे ही निश्चित की गयी थी; व्यक्तिगत आध्यात्मिक उन्नतिमें इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। अपनी आत्माको बन्धनमुक्त करनेके साधनोंपर मनुष्यमात्रका समान अधिकार है। ब्राह्मण हो या शूद्र, क्षत्रिय हो या वैश्य, धर्मपरायण वही कहा जा सकता है जो उदार हो, प्राणीमात्रसे अपने समान प्रीति रखता हो, अणु-अणुमें भगवान्का रूप—भगवान्की सत्ता समझकर सबका आदर करता हो। तुलसीदासजी एक जगह कहते हैं कि "सीयराममय सब जग जानी। करौं प्रणाम जोरि जुग पानी।" हमारे चरित्र-नायक श्रीरामकृष्णके निर्मल हृदयमें जाति-अभिमानके यह सङ्कुचित भाव कैसे रह सकते थे? वे तो विश्वभरको विश्वम्भरका ही स्वरूप मानते थे। इस उदारताके कारण श्रीरामकृष्णको रानीके मन्दिरमें पूजाकार्य करनेमें किञ्चिन्मात्र भी सङ्कोच नहीं हुआ। वह भगवान्की पूजा दत्तचित्त हो भक्ति-भावसे करने लगे। महापुरुषोंमें यही विशेषता होती है कि वे जो भगवत्-कार्य प्रारम्भ कर देते हैं उसमें तल्लीन हो जाते हैं। वास्तवमें बिना एकाग्रताके कोई भी कार्य सफल नहीं हुआ करता। मनोवृत्तियोंके बिखरे रहनेसे सभी काम अधूरे रह जाते हैं। श्रीरामकृष्ण राधा-गोविन्दकी प्रतिमामें साक्षात् चिन्मय, सर्वव्यापक परमात्माकी ही भावना करते थे। वह ध्यानकी मग्नतामें बहिर्ज्ञान-शून्य हो घण्टों निश्चेष्ट बैठे रहते! इस अवस्थामें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह अपूर्व ज्योतिका दर्शन करते, अपने चारों ओर देदीप्यमान प्रकाशके फैल जानेसे नानात्वके तिरोभावका अनुभव करते। जो लोग भगवान्‌के दर्शन करने मन्दिरमें आते, वे श्रीरामकृष्णके चेहरेपर चमकते हुए अद्भुत प्रकाश और उनकी ध्यानमग्न अवस्थाको देखकर चकित हो जाते।

रामकुमारको रामकृष्णके कार्यसे बड़ा सन्तोष था। वह समझने लगे, कि अब रामकृष्ण देवार्चनका कार्य भलीभांति करने लगेगा और उन्हें गृहस्थीका प्रबन्ध करने के लिये कुछ अवकाश मिल जायगा। वृद्धावस्थाके कारण उनका शरीर भी शिथिल होता जा रहा था, इसलिये वह चाहते थे कि रामकृष्णको काली-मन्दिरकी पूजाका भार सौंप दें। परन्तु बिना दीक्षित हुए यह कार्य करना शास्त्र-विरुद्ध है, इसीलिये उन्होंने एक भक्तिमान् दक्ष ब्राह्मणसे रामकृष्णको दीक्षित करा दिया। अब वह रामकृष्णको कभी कभी भगवतीकी पूजामें नियुक्त कर दिया करते थे, और स्वयं राधा-गोविन्दकी पूजा करने लगते। मथुर बाबू रामकृष्णके पूजा-कार्यसे बड़े प्रसन्न थे। जब रामकुमारकी इच्छा घर जानेकी हुई, तो उन्होंने रामकृष्णको अपनी जगह नियुक्त कर दिया। 'हृदय' भी उनका सहायक रहता था। घर चले जानेके बाद रामकुमारका देहान्त हो गया। इस दुर्घटनासे रामकृष्णको अत्यन्त दुःख हुआ, क्योंकि पिताके देहावसानके उपरान्त वह अपने ज्येष्ठ भ्राता ही को पिता-तुल्य समझकर उनमें बड़ा प्रेम और आदर-भाव रखते थे। अब उनके चित्तपर जगत्‌के क्षणभंगुर होनेका भाव दृढ़तासे अङ्कित होगया। इसलिये वह उस अजर, अमर वस्तुकी खोजमें दिन-रात लीन रहने लगे जो अपरिवर्तनशील, सदा एकरस और आनन्दमय है। एकाग्र-चित्त हो भगवतीकी सेवामें ही अब वह अपना सारा समय व्यतीत करने लगे। दीक्षित होनेके बाद भगवती काली ही उनकी इष्टदेवी हो गयी। वह काली-विग्रहको निर्जीव पाषाणमूर्ति नहीं मानते थे, उनके भावमें वह साक्षात् जगद्धात्री माँ ही थी। वही जगत्-पालक और वही जगत्-विनाशक शक्ति थी। उसीके चरणोंमें उन्होंने अपना तन, मन पूर्णतया अर्पण कर दिया था। छोटा बालक जिसप्रकार अनन्यभावसे माँसे ही प्रेम करता है, उसीको एकमात्र आश्रय मानता है, दूसरेको जानता ही नहीं; इसीप्रकार रामकृष्णके हृदयमें अपनी माँ कालीके सिवा अन्य किसीके लिये स्थान नहीं था। संसारी मनुष्योंके समागमसे उन्हें बड़ी विरक्ति होगयी और अपना समय एकान्त-स्थानमें बिताना ही उन्हें प्रिय लगने लगा। निर्जन वनमें अथवा श्मशान-भूमिमें जाकर रातभर ध्यानमग्न रहा करते, और जब सवेरे वहांसे लौटते तो उनकी आंखें सूजी हुई देखकर लोगोंको बड़ी चिन्ता और आश्चर्य होता। यदि 'हृदय' इसका कारण पूछता तो वह कुछ उत्तर न देते। उनके मौनसे 'हृदय' चिन्तित होकर इस भेदकी खोजमें लग गया। वह उनसे बड़ा प्रेम करता था, सदैव उनकी देख-भाल रखता था। रामकृष्णको खाने-पीनेकी भी सुध न थी, तिसपर सारी रात बिना सोये बाहर रहनेसे उनके स्वास्थ्यका बिगड़ जाना अवश्यम्भावी था। इसलिये स्वास्थ्यबाधक रहस्यका पता लगानेके विचारसे एक रातको वह चुपचाप उनके पीछे हो लिया। आगे जाकर देखता है कि वह घने जंगलमें घुस रहे हैं। उसका साहस उस विकट जंगलमें घुसनेका न हुआ। वह पीछे ही ठहर गया और पत्थर फेंकने लगा जिससे रामकृष्ण डरकर बाहर निकल आवें। परन्तु उन्हें कुछ भी भय न लगा, रात भर वहीं रहे। प्रातःकाल जब वह लौटे तो 'हृदय'ने उनसे पूछा कि 'सारी रात जंगलमें क्या करते थे'? उन्होंने कहा कि 'वहां एक आंवलेका वृक्ष है, उसीके नीचे बैठकर ध्यान किया करता हूं, वहां ध्यान खूब जमता है'। उसने उनसे बहुत कुछ निवेदन किया कि 'आप वहां जाना छोड़ दें, और मन्दिरमें ही बैठकर ध्यान किया करें'। परन्तु वह किसीकी क्यों सुनने लगे, नित्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपनी धुनमें मौजसे रातभर वहां रहते। 'हृदय' ने जब समझा कि वह किसीप्रकार मानते ही नहीं तो वह स्वयं एक रातको अत्यन्त साहसपूर्वक जङ्गल में घुस ही गया। क्या देखता है कि रामकृष्ण आंवलेके पेड़-तले सारे कपड़े तथा जनेऊ उतार कर बिल्कुल नंगे ध्यानमग्न बैठे हुए हैं। उसने उस समय उनसे पूछा कि, 'चचा, यह क्या अवस्था है? इस तरह जनेऊ और कपड़े उतारे क्यों बैठे हो?' परन्तु वह ध्यानमें ऐसे तल्लीन थे कि उन्हें कुछ भी सुन न पड़ा। कुछ देर पीछे जब उन्हें चेत हुआ तो 'हृदय' ने फिर वही प्रश्न किया। पूछनेपर वह बोले कि, 'परमात्माका चिन्तन समस्त बन्धनोंको छोड़-कर ही करना चाहिये। जन्म-कालसे आठ प्रकारके बन्धन जीवको जकड़े हुए हैं,-घृणा, लज्जा, कुलाभिमान, विद्याभिमान, जात्यभिमान, भय, ख्याति और अहङ्कार। मैं प्रतिष्ठित घरानेका हूं, ब्राह्मण हूं, सब वर्णोंसे ऊंचा हूं—मां का आराधन करनेके लिये इन सब कुभावोंका परित्याग कर देना उचित है। ध्यानके बाद मैं फिर जनेऊ-कपड़े पहन लूंगा।' यह सुनकर 'हृदय' चुपचाप वापिस चला गया।

सच्चे जिज्ञासु और मुमुक्षुके हृदयमें जब यह भाव उत्पन्न होकर भगवत्प्राप्तिकी उत्कट इच्छा पैदा होती है तभी उस परात्पर सर्वान्तर्यामी प्रभुके दर्शन होते हैं, अन्यथा नहीं। हमलोग आयुभर पूजा-पाठ, जप-ध्यानादिका ढोंग करते हैं परन्तु 'ढाकके वही तीन पात'—कुछ प्राप्त नहीं होता। कारण यही है कि मन विषय-वासनाओंसे ठसाठस भरा रहता है, भगवत्प्राप्तिकी लगन कैसे लगे? परिश्रम करनेका साहस नहीं, सहजमें ही सफलता चाहते हैं। सारा समय तो संसारके विषय-भोगोंके चिन्तनमें बीतता है, घड़ी आधघड़ीके लिये भगवत्-स्मरणके बहाने जब पूजामें बैठते हैं तो मन अपनी वही उधेड़-बुन लगाये रहता है। ऐसी अवस्थामें भगवदाराधन विडम्बनामात्र नहीं तो क्या है? मिथ्या मोह-मायासे वास्तवमें दुखी होकर मनुष्य जबतक श्रीरामकृष्णकी भांति आर्त्त हो एकाग्रचित्तसे भगवान्‌को नहीं पुकारता तबतक वह आशुतोष पतितपावन प्रभुका सान्निध्य नहीं प्राप्त कर सकता। रामकृष्णके हृदयमें तो मां के दर्शनकी ही एकमात्र लालसा थी, वह खाना-पीना-सोना सब भूल गये थे! बस, रातदिन उन्हींके मिलनकी चिन्ता, उन्हींकी मन-मोहनी छटाके दर्शनकी चाह! रामप्रसाद, कमलाकान्त जैसे भक्तोंके भजन सुनते ही आंखोंसे अश्रुधारा बह निकलती, और वह आर्त्त हो पुकारने लगते 'मां! तू कहां है?' क्यों नहीं मुझे दर्शन देती? रामप्रसाद इत्यादिको तूने दर्शन दिया, क्या मैं ही तेरा अभागा पुत्र हूं जो मुझसे छिपी रहती है? मुझे जगत्‌के वैभवकी कुछ भी चाह नहीं है, मैं तो एकमात्र तुझे ही चाहता हूं।' इसतरह रोते-रोते जब सारा दिन बीत जाता तो फिर व्यथित हो चिल्ला उठते, 'मां! इस थोड़से जीवन-का एक और दिन बीत गया, परन्तु तेरा दर्शन नहीं हुआ।' फिर वह कालीकी प्रतिमाके सामने बैठकर कहते, 'मां! क्या तू सत्य है या मनुष्योंकी केवल कल्पनामात्र है? यदि तू वास्तवमें सत्य है तो मुझे तेरा दर्शन क्यों नहीं होता? जीवन बीत रहा है, दिनोंदिन मैं मृत्युकी ओर जा रहा हूं, परन्तु तुझसे नहीं मिल पाता। शास्त्र कहते हैं कि जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवान्‌का साक्षात्कार करना ही है, नहीं तो जीवन वृथा है। इस जीवनसे, मां! क्या लाभ जो तेरे भवभय-हारी दर्शनके बिना नष्ट हो जाय?' ऐसे विचारोंके निरन्तर प्रवाहसे विरहाग्नि उनके मनमें प्रचण्ड हो उठती थी। वे बेचैन और पागल-से होकर महान् मनोवेदनाका अनुभव करते। उन्हें भगवान्‌के अस्तित्वमें रत्ती भर भी अविश्वास न था, यह शङ्का ही न थी कि न जानें वह हैं वा नहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वास्तवमें इस पथमें एक विश्वासही सफलताका कारण है, जिसे विश्वास है वह सब कुछ कर सकता है।

भगवतीके वियोगकी असह्य वेदनाकी चर्चा करते हुए वह प्रायः कहा करते थे कि 'उस विरहकी दुःख-दशाका वर्णन नहीं किया जा सकता। मेरी ठीक वैसी ही अवस्था है, जैसी उस चोरकी होती है जो एकबार घरमें घुस बैठा हो, पासकी ही दूसरी कोठरीमें धनके होनेका उसे निश्चय हो और बीचमें एक पतलीसी दीवार पड़ती हो। उस समय चोरके मनमें केवल धनके पानेकी ही लगन रहती है! वहां नींद कहां, चैन कहां? जिसप्रकार प्रत्येक सम्भव उपायोंसे वह उस भींतको तोड़नेकी चेष्टा करता है, उसीप्रकार मैं जानता हूं कि मां जो सच्चिदानन्दघन है, मेरे अत्यन्त निकट है, इस अवस्थामें मैं उससे मिले बिना कैसे निश्चिन्त रह सकता था? उन्हें ढूंढ़नेके लिये मैं पागल हो गया।' इस अवस्थामें वह खाना-पीना और सोना बिल्कुल भूल गये थे। 'हृदय' कभी कभी उनके मुंहमें दूध डाल दिया करता था, और उसे पीनेके लिये उन्हें बाध्य करता। माँकी ही चिन्तामें वह बहिर्ज्ञानशून्य हो गये थे। भगवतीकी आरतीके समय घण्टे-घड़ियालके शब्द थोड़ी देरके लिये उन्हें कभी कभी सावधान कर देते परन्तु फिर अत्यन्त वेदनाके कारण अपना सिर धरतीपर पटक-पटक कर कहते 'माँ अभी तक नहीं आयी?' फिर यह विचारते कि शायद मुझमें जाति-अभिमान बाकी है जो मांसे मुझे अलग किये हुए है। इस हेतु उसे जड़से उखाड़नेके लिये वह पड़ोसमें रहनेवाले किसी अन्त्यज जातिके घरमें घुसकर उसके दालानको झाड़ूसे बहारकर साफ़ करते। वापस आकर फिर मांसे कहते कि 'मां अब भी तू नहीं आयी?' इसके उपरान्त यह सोचते कि शायद काञ्चनकी वासना मनसे सर्वथा नष्ट न होनेके कारण ही मांसे वियोग हो रहा है। अतः इसे जड़से उखाड़नेके अभिप्रायसे वह गङ्गातटपर जा एक हाथमें रेणुका और दूसरे हाथमें पैसा लेकर दोनोंको जांचते और कहते कि 'मिट्टीसे ही सब भोज्य-पदार्थ पैदा होते हैं और धनसे उन पदार्थोंको मोल लेते हैं! यदि मिट्टीसे पदार्थ न उपजें, तो मोल ही किसे लें? इसलिये मिट्टी ही धनसे श्रेष्ठ है; मिट्टीको फेंकना और धनको चाहना बड़ी मूर्खता है।' फिर वह दोनोंको गङ्गामें फेंक देते। इन विचारोंसे उनके हृदयमें काञ्चनकी लालसा सर्वथा निर्मूल होगयी। पीछे यहाँतक अवस्था हुई कि यदि उनके अङ्गसे कोई धातुकी वस्तु स्पर्श कर जाती तो वह अङ्ग ऐंठ जाता! लोभ भी नष्ट हुआ पर फिर भी मांका दर्शन नहीं हुआ, यह चिन्ता करते करते विचार उठा कि शायद काम-वासना ही मांसे वियोगका कारण हो। इसे नष्ट करनेके लिये वह गङ्गा-तट पर जा फूट-फूट कर रोने लगे। घण्टों रोये, यहांतक कि अश्रु-प्रवाहके जलने हृदयको कामवासनासे भी सर्वथा शून्य बना दिया। फिर भी मांका दर्शन नहीं होता। (क्रमशः)

दो पदके पशु

पापसे भीति न पुण्यसे प्रीति, नहीं परमेश्वरको डरते हो।
हो हर एकको प्यारे नहीं, तुम पीर पराई नहीं हरते हो॥
पा करके यह मानुष-देह, दया करते, न हया करते हो।
तो तुम हो पशु दो पदके, फिरते परमोदरको भरते हो॥

भगवतीप्रसाद त्रिपाठी 'विशारद' एम० ए०, एल-एल० बी०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
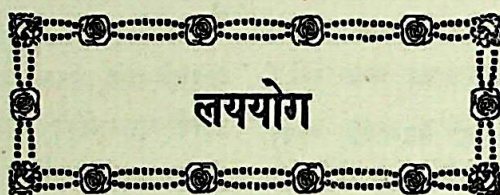
लययोग

(लेखक-स्वामीजी श्रीविज्ञानहंसजी)

चित्त-वृत्ति-निरोधद्वारा आत्म-साक्षात्कार-लाभ करनेके लिये निर्दिष्ट क्रियाओंका नाम योग है। यौगिक क्रिया-सिद्धान्तमें लययोग तृतीय स्थानीय है; इसलिये मन्त्रयोग और हठयोगसे लययोग सूक्ष्म विज्ञान-युक्त है।

भगवान् अङ्गिरा, याज्ञवल्क्य, पतञ्जलि, कपिल, वेदव्यास, वसिष्ठ, कश्यप आदि महर्षियोंकी कृपासे परम मङ्गलकारी तथा मन, वाणी आदिसे अगोचर ब्रह्मपद-प्राप्तिके लिये लययोग-सिद्धान्त संसारमें प्रकट हुआ है।

प्रकृति-पुरुषात्मक श्रृङ्गारसे उत्पन्न हुए ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों एक ही हैं। समष्टि और व्यष्टि-सम्बन्धसे ब्रह्माण्ड और पिण्ड एकत्व-सम्बन्ध-युक्त हैं; सुतरां ऋषि, देवता, पितर, ग्रह, नक्षत्र, राशि, प्रकृति-पुरुष सबका स्थान समानरूपसे ब्रह्माण्ड और पिण्डमें है। पिण्ड-ज्ञानसे ब्रह्माण्ड-ज्ञान हो सकता है।

श्रीगुरुदेवके उपदेशद्वारा सब शक्तिसहित पिण्ड-ज्ञान प्राप्त कर लेनेके अनन्तर सुकौशलपूर्ण क्रियाद्वारा प्रकृतिको पुरुषमें लय करनेसे लययोग होता है। पुरुषका स्थान सहस्रारमें है और कुल-कुण्डलिनी नाम्नी महाशक्ति आधार-पद्ममें प्रसुप्ता हो रही है। उनके प्रसुप्त होनेसे ही बहिर्मुखी सृष्टि-क्रिया हो रही है। योगाङ्गद्वारा उनको जाग्रत करके पुरुषके पास ले जाकर लय कर देनेसे योगी कृतकृत्य होता है; इसीका नाम लययोग है।

लययोगके नौ अङ्ग हैं—

अङ्गानि लययोगस्य नवैवेति पुराविदः।
यमश्च नियमश्चैव स्थूलसूक्ष्मक्रिये तथा॥
प्रत्याहारो धारणा च ध्यानञ्चापि लयक्रिया।
समाधिश्च नवाङ्गानि लययोगश्च निश्चितम्॥

यम, नियम, स्थूलक्रिया, सूक्ष्मक्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लयक्रिया और समाधि ये नौ अङ्ग हैं।

स्थूल शरीरप्रधान स्थूल क्रिया और वायु-प्रधान क्रिया सूक्ष्म क्रिया कही जाती है। विन्दुमय प्रकृति-पुरुषात्मक ध्यानको विन्दु-ध्यान कहते हैं। यह ध्यान लययोगका परम सहायक है। लययोगके अनुकूल अति सूक्ष्म क्रिया (जो केवल जीवन्मुक्त योगियोंके ही उपदेशसे प्राप्त होती है) को लय-क्रिया कहते हैं। लय-क्रियाओंके साधनसे सोयी हुई महाशक्ति जागकर ब्रह्ममें लय होती है। इनकी सहायतासे जीव शिवत्वको प्राप्त होता है और इनकी सिद्धिसे महालय-समाधिका लाभ होता है, जिससे साधक कृतकृत्य हो जाता ह।

अब इन अङ्गोंको अलग अलग करके वर्णन किया जाता है:—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्।
क्षमाधृतिर्मिताहारः शौचन्त्वेते यमा दश।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धृति, मिताहार और शौच, ये दश यम हैं।

मन, वचन अथवा शरीरसे कभी भी किसी प्राणीको दुःख न देनेका नाम अहिंसा है। जिस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वचनसे प्राणियोंका हित होता है उसे सत्य कहते हैं, केवल सत्य भाषणका ही नाम सत्य नहीं। मन, वचन अथवा शरीरसे दूसरेके धन-ग्रहणमें अभिलाषा न रखनेको ही महर्षिगण अस्तेय कहते हैं। मन, वाणी और कर्मसे सब अवस्था और सब कालमें मैथुन-त्याग करनेको ब्रह्मचर्य कहते हैं। ब्रह्मचारी, संन्यासी, नैष्ठिक व वानप्रस्थोंका यही ब्रह्मचर्य है; गृहस्थका ब्रह्मचर्य ऋतुकालमें स्वस्त्रीसे विधिपूर्वक सङ्गति करनेसे भी स्थिर रहता है।

शरीर, मन और वचनसे सर्वदा सब प्रकारसे समस्त जीवोंमें अनुग्रह-स्पृहाका नाम दया है। प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिमें एकरूप रहना आर्जव है। प्रिय और अप्रिय-विषयमें मनुष्यकी जो एक भावसे स्थिति है उसको वेदवादीगण क्षमा कहते हैं। धनके नाश होनेपर, बन्धुओंसे वियोग होनेपर सम्पत्ति अथवा विपत्तिके समयमें भी चित्तको दृढ़ रखनेको धृति कहते हैं।

मुनिको आठ ग्रास भोजन करना चाहिये, अरण्यवासी वानप्रस्थको सोलह ग्रास, गृहस्थको बत्तीस ग्रास और ब्रह्मचारीको इच्छाके अनुसार भोजन करना चाहिये; यही उनका मिताहार कहलाता है। अन्य लोगोंका अल्प भोजन ही मिताहार है।

बाह्य और अभ्यन्तर भेदसे शौच दो प्रकारका होता है। मृत्तिका और जलसे बाह्य शुद्धि होती है, आभ्यन्तर शुचि मनको शुद्ध करना है, अध्यात्म-विद्या और धर्म-साधनसे मनकी शुद्धि होती है। अध्यात्मविद्या और धर्म, पिता और आचार्यद्वारा प्राप्त होते हैं। लय-योगके द्वितीय अङ्गका नाम नियम है—

तपःसन्तोषमास्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्।
सिद्धान्तश्रवणञ्चैव ह्रीर्मतिश्च जपोव्रतम्॥

तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वर-पूजन, सिद्धान्तश्रवण, ह्री, मति, जप और व्रत, ये नियम हैं।

लययोगके तृतीय अङ्गका नाम स्थूल क्रिया है, जिसमें आसन-मुद्रादि सम्मिलित हैं। लययोगके आचार्य लययोगमें सहायक तीन आसन मानते हैं:- स्वस्तिकासन, पद्मासन और सिद्धासन। इनके लक्षण हठयोग-प्रकरणमें पहले लिख चुके हैं।

हठयोगके ज्ञाता महर्षियोंने हठयोगके लिये पचीस मुद्राएं कही हैं, परन्तु लययोगके तत्त्वदर्शी महर्षियोंने लययोगके लिये आठ मुद्राओंका ही विधान किया है। प्रत्याहार-सिद्धिके लिये शाम्भवी मुद्रा, धारणा-सिद्धिके लिये पञ्चधारणामुद्रा, ध्यान-सिद्धिके लिये शक्तिचालिनी और योनिमुद्रा। इनके लक्षण हठयोग-प्रकरणमें कहे गये हैं, शेष आगे प्रसङ्गसे कहे जायंगे।

लययोगके चतुर्थ अङ्गका नाम सूक्ष्म क्रिया है, जिसमें प्राणायाम आदि विविध क्रियाएं सम्मिलित हैं।

प्राण और स्थूल वायु कार्य-कारण-सम्बन्धसे एक ही है। वायु-प्रधान क्रियाको सूक्ष्म क्रिया कहते हैं। प्राणायाम और स्वरोदय सूक्ष्म क्रियाके अन्तर्गत है। लययोगके लिये केवल एक ही प्राणायाम कहा गया है, लययोगके उपयोगी प्राणायामको केवली प्राणायाम कहते हैं। इन्द्रियोंके विषयको मनसे हटाकर भ्रूयुगलके बीचमें चक्षु स्थिर करके नासिका और अभ्यन्तरचारी प्राण तथा अपानको समभावमें परिणत करनेसे केवली प्राणायामका साधन होता है।

जो साधक केवली प्राणायामका साधन करते हैं, वे ही यथार्थमें योगी हैं। केवली प्राणायामके साधनसे साधकके लिये इस संसारमें कुछ भी असाध्य नहीं रहता, इस प्राणायामके साधनको करते हुए बहुत शीघ्र क्रमशः प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि-भूमियोंका अनुभव हो सकता है। इस सूक्ष्म क्रियाके अनन्तर स्वरोदय भी है, यहां उसका वर्णन करनेसे यह निबन्ध न होकर पुस्तक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो जायगी, इसलिये यहां इसका उल्लेख नहीं किया जाता। इसके जाननेके इच्छुकोंको स्वरोदय-शास्त्र देखना चाहिये।

लययोगके पञ्चम अङ्गका नाम प्रत्याहार है। जिस प्रकार कछुआ अपने अङ्गोंको सिकोड़कर अदृश्य कर देता है उसी प्रकार मनकी शक्तिको इन्द्रियोंसे हटाकर अन्तर्मुखी करनेको प्रत्याहार कहते हैं। प्रत्याहार अन्तर्जगत्का द्वाररूप है। शाम्भवी मुद्राद्वारा प्रत्याहार अभ्यास किया जाता है। प्रत्याहारकी सिद्धि आरम्भ होते ही नादका प्रारम्भ होता है, नादकी सहायतासे समाधितककी प्राप्ति होती है; इसलिये प्रत्याहारकी महिमा अनन्त है। शब्द आदि जो पांच विषय हैं उनमें चञ्चल मन सदा रमण किया करता है, उनसे मनको हटाकर परमात्माकी ओर उसकी गतिका परिवर्तन करनेसे प्रत्याहार होता है। यावन्मात्र चराचर जगत् जो कुछ देखने और सुननेमें आता है उस सबको अपने हृदयमें आत्मस्वरूपवत् देखनेकी अवस्थाको योगिगण प्रत्याहार कहते हैं।

दोनों पैरोंके अंगूठे, दोनों पैरोंकी एड़ी, दोनों जङ्घाओंके मध्यदेश, दोनों उरुओंके मध्यदेश, गुदाका मूलदेश, देहका मध्यदेश, लिङ्गदेश, नाभिदेश, हृदयदेश, कण्ठकूप, तालुका मूलदेश, नासिका मूलदेश, दोनों नेत्रोंके मण्डल, दोनों भुजाओंके मध्यदेश, ललाटदेश और ब्रह्मरन्ध्र ये सब इस स्थूल शरीरके मर्मस्थान कहलाते हैं। इन स्थानोंमें क्रमशः नीचेसे ऊपरकी ओर प्राण-वायु-सहित मनको धारण करते हुए शेष स्थानमें मनको पहुंचानेसे प्रत्याहार क्रियाका साधन हुआ करता है।

प्रत्याहार-साधनमें उन्नतिके साथ ही साथ जो नाद श्रवण होने लगता है उसके विषयमें योगशास्त्रमें कहा है—

श्रीआदिनाथेन सपादकोटिर्लयप्रकाराः कथिता जयन्ति।
नादानुसन्धान क्रमेक्रमे च मन्यामहे मान्यतमं लयानाम्॥
मुक्तासने स्थितो योगी मुद्रां सन्धाय शाम्भवीम्।
शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्तस्थमेकधीः॥

श्रीभगवान् आदिनाथ शिवजीने चित्त-लयकी सवा करोड़ विधियोंका वर्णन किया है, उनमेंसे नादानुसन्धान-क्रिया सबमें श्रेष्ठ है। मुक्तासनमें स्थित होकर शाम्भवी नामक मुद्राके साधनसे एकाग्रचित्त होता हुआ योगी दक्षिण कर्णद्वारा सुषुम्ना नाड़ीमें संयम करके नादको श्रवण करे। कर्णयुगल, नयनयुगल, नासिका और मुख इनको हस्तांगुलीद्वारा बद्ध करके निर्मलचित्त हो योगी यदि सुषुम्नागत होकर नाद श्रवण करे तो भी नादानुसन्धान-क्रियाका साधन हो सकता है। नादानुसन्धानके चार भेद हैं, यथा–आरम्भावस्था, घटावस्था, परिचयावस्था और निष्पत्ति-अवस्था।

अब इनका वर्णन क्रमशः किया जाता है। आरम्भावस्था वह कहलाती है जब कि ब्रह्मग्रन्थि भेदन हो जाय और हृदयाकाशसे उत्पन्न नाना प्रकारके भूषणोंके शब्दके अनुरूप आनन्द देनेवाली अनाहत ध्वनि सुनायी दे; यही प्रथम अवस्था है। इस अवस्थामें योगीको दिव्य देह, दिव्य तेज, उत्तम गन्ध और नीरोगताकी प्राप्ति हुआ करती है।

द्वितीय घटावस्था वह है जब कि प्राणवायु और नाद कण्ठ-स्थानके मध्यचक्रसे आरम्भ होता हो, इस अवस्थामें योगी आसनमें दृढ़, पूर्णज्ञानी और देवताकी तरह शरीरयुक्त हो जाता है।

ब्रह्मग्रन्थिके भेदनके अनन्तर कण्ठमें स्थित विष्णु-ग्रन्थिके भेदनसे इस नादकी उत्पत्ति होती है; इस अवस्थामें अति शून्यावस्थास्थित भेरीनादका श्रवण हुआ करता है।

तीसरी परिचयावस्था वह कहलाती है जब कि भृकुटीके मध्यमें जो आकाश है उससे योगीको शब्द सुनायी देने लगे। इस अवस्थामें आकाशमें मर्दल ध्वनि सुनायी देती है और इस तृतीय अवस्था-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को प्राप्त होनेसे सिद्धियाँ योगीको आश्रय कर लेती हैं।

चौथी निष्पत्ति अवस्था वह है जब कि योगीके चित्तमें सम्पूर्ण इन्द्रियादि-सुखका नाश होकर स्वाभाविक आत्मसुखका उदय हो जाता है। उस समय योगी दोष-दुःख, जरा-व्याधि, क्षुधा-निद्रा आदिसे रहित हो जाता है। इस अवस्थामें रुद्र-ग्रन्थिका भेदन हो जाता है। तब प्राणवायु भ्रूमध्यस्थित सर्वेश्वर-पीठको प्राप्त हो जाता है। इस अवस्थामें वीणा-शब्द सुनायी देता है और इसी अवस्थाका नाम निष्पत्ति अवस्था है। बार बार नादानुसन्धानसे योगीके चित्तमें जो परमानन्दका उदय होता है उसका वर्णन वाणीसे नहीं हो सकता, एकमात्र श्रीगुरुदेव ही उस आनन्दको जानते हैं। योगीको निश्चल बैठकर अपने कर्णोंको अंगुलियोंसे बन्दकर कर्ण-ध्वनि सुननेसे भी नादानुसन्धान-क्रिया होती है। इस क्रियासे क्रमशः चित्तमें लयका उदय होता है। नादके अभ्याससे योगीके चित्तमें बाह्य ध्वनिका आवरण हो जाता है। एक पक्षमें ही योगीके चित्तकी चञ्चलता दूर होकर वह आनन्दको प्राप्त हो जाता है। प्रथमाभ्यासमें बहुत प्रकारके शब्द सुननेमें आते हैं, फिर अभ्यासकी वृद्धिके साथ साथ बहुत तरहके सूक्ष्म नाद सुननेमें आते हैं। आदिमें समुद्र-तरङ्गध्वनि, मेघध्वनि, भेरी और झर्झर-ध्वनियां सुनायी दिया करती हैं; अनन्तर मध्यावस्थामें मर्दल, शङ्ख, घण्टा आदिके शब्द सुननेमें आया करते हैं और अन्तमें प्राणवायुके ब्रह्मरन्ध्रमें स्थिर हो जानेपर देह-मध्यसे नानाप्रकारके किंकिणी, वंशी, वीणा और भ्रमर-गुञ्जारकी तरह शब्द श्रवण होते हैं। जब मेघ, भेरी आदिके महान् शब्द सुनायी देने लगें तब साधकको उचित है कि संयमद्वारा सूक्ष्म शब्द सुननेका यत्न करे। सूक्ष्म शब्दसे घन-शब्दमें, घन-शब्दसे सूक्ष्म शब्दमें ही संयम करे। रजोगुणसे अति चञ्चल मनको और किसी तरफ न जाने दे, जिस नादमें मन लग जाय उसी नादमें मनको स्थिर करके लय करनेकी चेष्टा करे।

मनरूप मत्त मातङ्ग विषयरूप उद्यानमें सदा भ्रमण किया करता है। एकमात्र नादानुसन्धान-क्रिया ही मत्त मातङ्गके लिये अंकुशरूप है। यथार्थ अनहद-शब्द जब सुनायी देने लगता है तब नाद-ध्वनिके अन्तर्गत ईश्वररूप दर्शन होता है और तत्पश्चात् परमात्मामें मन लयको प्राप्त होकर जीव विष्णुके परमपदमें पहुंच जाता है। जबतक नाद सुननेमें आता है तबतक आकाशकी स्थिति रहती है, परन्तु जब मनसहित लयको प्राप्त होता है तब जीव ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है। नादरूपसे जो कुछ सुना जाता है वही ईश्वर है—महाशक्ति है। और जो शब्दरहित निराकार अवस्था है वही परब्रह्म परमात्माका रूप है अर्थात् नाद-अवस्थामें सगुण ब्रह्म, तत्पश्चात् निर्गुण ब्रह्मका अनुभव हुआ करता है। नादानुसन्धानकी भूमि प्रत्याहारसे लेकर समाधिपर्यन्त है, नाद ही ब्रह्मस्वरूप है।

लययोगके षष्ठ अङ्गका नाम धारणा है, जिसमें षट्चक्रादि क्रिया अन्तर्भुक्त है। योगी जब अन्तर्जगत्में पहुंचकर पञ्च सूक्ष्म तत्त्वोंमेंसे किसी सूक्ष्म प्रकृतिके भावमें अन्तःकरणको ठहरा सकता है तब उसीका नाम धारणा है। पञ्चधारणा मुद्राओंकी सहायतासे पञ्चतत्त्वोंपर अधिकार जमाकर गुरूपदेश-लभ्य धारण-क्रियाद्वारा योगवित् साधक अन्तरराज्यको वशीभूत कर सकते हैं; उससे विविध शक्तियां प्राप्त होती हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पांच भूत हैं, इससे धारणा भी पांच प्रकारकी होती है।

पैरोंसे लेकर जानुपर्यन्त पृथ्वीका स्थान है, जानुसे लेकर गुदापर्यन्त जलतत्त्वका स्थान है, गुदासे लेकर हृदयपर्यन्त अग्नितत्त्वका स्थान है, हृदयसे लेकर भ्रूपर्यन्त वायु-तत्त्वका स्थान है और भ्रूसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त आकाश तत्त्वका स्थान है। श्रेष्ठ मुनिगण पञ्चधारणा नामक मुद्रा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वारा इस प्रकार पञ्चतत्त्व-धारणाका अभ्यास करते हैं।

अब धारणाके अन्तर्गत षट्चक्र-भेदका वर्णन किया जाता है। उपस्थसे दो अंगुल नीचे और गुदासे दो अंगुल नीचे चतुरंगुलिविस्तृत समस्त नाड़ियोंके मूलस्वरूप पक्षीके अण्डेकी तरह एक कन्द विद्यमान है, जिसमेंसे ७२००० नाड़ियां निकलकर सर्व शरीरमें व्याप्त हो गयी हैं। उन नाड़ियोंमेंसे योगशास्त्रमें तीन नाड़ियां मुख्य हैं—मेरुदण्डके बहिर्देशमें इड़ा-पिङ्गला नामकी दो योग-नाड़ियां हैं, जो चन्द्र और सूर्यस्वरूपिणी मेरुदण्डके वाम और दक्षिण दिशामें विराजमान हैं। मेरुदण्डके मध्यदेशमें सूर्यचन्द्राग्निरूपा सुषुम्ना नाड़ी स्थित है। मूलसे उठकर मेरुदण्डके वाम और दक्षिण दिशामें समस्त पद्मों अर्थात् चक्रोंको वेष्टन करके आज्ञा-चक्रके अन्ततक धनुषाकारसे इड़ा और पिङ्गला नाड़ी जाकर भ्रूमध्यके ऊपर ब्रह्मरन्ध्र-मुखमें सङ्गता होकर नासारन्ध्रमें प्रवेश करती हैं। भ्रूमध्यके ऊपर जहां इड़ा-पिङ्गला मिलती हैं, वहांपर मेरु-मध्यस्थित सुषुम्ना भी जा मिलती है; इसलिये वह स्थान त्रिवेणी कहलाता है, क्योंकि शास्त्रमें इन तीनों नाड़ियोंकी गङ्गा, यमुना और सरस्वती संज्ञा है—

इडा भोगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी।
इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्ना च सरस्वती॥

मेरुदण्डके मध्यस्थित सुषुम्ना अत्यन्त सूक्ष्म और स्थूल नेत्रके अगोचर होनेसे अन्तःसलिला सरस्वतीरूप है। जिस तरह गंगा, यमुना और सरस्वतीके सङ्गम-स्थान त्रिवेणीमें स्नान करनेसे मुक्ति होती है उसी तरह जब योगी योगबलसे अपनी आत्माको ब्रह्मरन्ध्रमें सङ्गता-त्रिवेणीमें स्नान करवाते हैं तो उनको मोक्ष मिलता है।

त्रिवेणी योगः सा प्रोक्ता तत्र स्नानं महाफलम्।

धनुषाकार इड़ा और पिङ्गलाके बीचमेंसे प्रणवाकृति सुषुम्ना मेरुदण्डके अन्ततक जाकर मेरुदण्डसे अलग हो वक्राकार धारण करके भ्रूयुगलके ऊपर ब्रह्मरन्ध्रमें मुखमें इड़ा-पिङ्गलाके साथ त्रिवेणीसे जा मिलती है। उसके अनन्तर वहांसे ब्रह्मरन्ध्रके अन्ततक जाती है। इड़ा-पिङ्गलाकी तरह सुषुम्ना भी मूलाधार पद्मान्तर्वर्ती कन्दमूलसे निकलकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त गयी है। ब्रह्मज्ञानप्रदायिनी सुषुम्नाके विषयमें योगशास्त्रकी सम्मति है—

विद्युन्माला विलासा मुनिमनसिलसत्तन्तुरूपा सुसूक्ष्मा।
शुद्धज्ञानप्रबोधा सकलसुखमयी शुद्धबोधस्वभावा॥
ब्रह्मद्वारं तदास्ये प्रविलसति सुधाधारगम्यप्रदेशम्।
ग्रन्थिस्थानं तदेतद्वदनमिति सुषुम्नाख्य नाड्या लपन्ति॥

विद्युत्मालाओंकी तरह जिसका प्रकाश है, मुनियोंके चित्तमें सूक्ष्म प्रदीप्त मृणाल-तन्तुरूपसे जो शोभायमान होती है, शुद्धज्ञानकी प्रबोधकारिणी सकलसुखमयी और शुद्धज्ञानस्वभावा यह ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना है।

इसी नाड़ीके मुखमें कुलकुण्डलिनी शक्तिके शिव-सन्निधानमें जाने-आनेके लिये पथ (मार्ग) विद्यमान है। वह स्थान परम शिवशक्ति सामरस्यके द्वारा निर्गत अमृतधाराके प्राप्त करनेका भी स्थान है। इस मूलसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त विस्तृत सुषुम्ना नाड़ीकी छः ग्रन्थियां हैं जो षट्चक्र कहलाती हैं।

योगक्रियासे मूलाधार-पद्मस्थिता निद्रिता कुलकुण्डलिनीको जाग्रत करके इन छः चक्रोंद्वारा सुषुम्ना-पथमें प्रवाहित करके ब्रह्मरन्ध्रके ऊपर सहस्रदल-कमलस्थित परमशिवमें लय कर देना ही लययोगका उद्देश्य है। अब इन छः चक्रोंका वर्णन करके पीछे लयक्रियाका वर्णन किया जायगा।

पहले चक्रका नाम मूलाधार पद्म है। यह पद्म गुदाके ऊपर लिङ्गमूलके नीचे सुषुम्नाके मुखमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संलग्न है अर्थात् कन्द और सुषुम्नाके सन्धिस्थलमें इसकी स्थिति है। इसमें रक्तवर्ण चतुर्दल है, इस पद्मकी कर्णिका अधोमुख है; उज्ज्वल सुवर्णकी तरह इनकी दीप्ति है। उसमें वं शं षं सं ये चार वेद-वर्ण हैं। इस पद्मकी कर्णिकामें चतुष्कोण पृथिवी-मण्डल है जो दीप्तवर्ण विद्युताङ्ग कोमल और अष्ट शूलके द्वारा आवृत है। इस पृथिवीमण्डलके बीचमें लं बीज विद्यमान है। मूलाधारपद्ममें डाकिनी नाम्नी देवीका स्थान है जो उज्ज्वल चतुर्हस्तसम्पन्ना रक्त-नेत्रा एककालीन उदित अनेक सूर्य तुल्य प्रकाशमाना तत्त्वज्ञानको प्रकाशित करनेवाली हैं।

वज्राख्या वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिकामध्यसस्थं
कोणं तत् त्रैपुराख्यं तड़िदिव विलसत्कोमलं कामरूपम्।
कन्दर्पो नाम वायुर्निवसति सततं तस्य मध्ये समन्तात्
जीवेशो बन्धुजीवप्रकरमभिहसन् कोटिसूर्यप्रकाशः।
तन्मध्ये लिङ्गरूपी द्रुतकनककलाकोमलः पश्चिमास्यो
ज्ञानध्यानप्रकाशः प्रथमकिसलयाकाररूपः स्वयंभूः।
विद्युत्पूर्णेन्दुबिम्बप्रकरचयस्निग्धसन्तानहासी
काशीवासी विलासी विलसति सरिदावर्तरूपप्रकारः।
तस्योर्ध्वे विसतन्तुसोदरलसत्सूक्ष्माजगन्मोहिनी
ब्रह्मद्वारं मुखं मुखेन मधुरं सञ्छादयन्ती स्वयम्।
शङ्खावर्त्तनिभा नवीन चपला माला विलासास्पदा
सुप्ता सर्पसमा शिवोपरिलसत्सार्द्धत्रिवृत्ताकृतिः।
कूजन्ती कुलकुण्डली च मधुरं मत्तालिमालास्फुटं
वाचः कोमलकाव्यबन्धरचना भेदातिभेदक्रमैः।
श्वासोच्छ्वास विभञ्जनेन जगतां जीवो यया धार्यते
सा मूलाम्बुजगह्वरे विलसति प्रोद्दामदीप्तावलिः।

आधार-पद्मकी कर्णिकाओंके गह्वरमें, वज्रा नाड़ीके मुखमें त्रिपुरसुन्दरीके अधिष्ठानरूप एक त्रिकोण-रूपी शक्ति-पीठ विद्यमान है, जो कामरूप कोमल और विद्युत्के समान तेजपुञ्ज है। इस त्रिकोणके मध्यमें उसे व्याप्त करके कन्दर्प-नामक वायु रहता है जो जीवका धारण करनेवाला बन्धुजीव पुष्पकी अपेक्षा रक्तवर्ण कोटि सूर्य-सदृश प्रकाशशाली है। कन्दर्प-वायु पूर्ण कामरूपी त्रिकोणके मध्यमें स्वयंभू लिङ्ग विद्यमान है जो पश्चिममुख तप्त काञ्चनतुल्य कोमल ज्ञान और ध्यानका प्रकाशक प्रथमजात पत्राङ्कुर-सदृश अवयवविशिष्ट विद्युत् और पूर्णचन्द्रके बिम्ब-ज्योति-तुल्य स्निग्ध ज्योति-सम्पन्न जलावर्तके तुल्य आकारयुक्त और काशीवासी-सदृश विलासशील वासयुक्त है।

इस स्वयंभू-लिङ्गके ऊपर मृणालतन्तु-तुल्या, सूक्ष्मा, शंखवेष्टनयुक्ता व सार्धत्रयवलयाकारा, सर्पतुल्य कुण्डलाकृति नवीन विद्युन्मालातुल्य प्रकाशशालिनी कुलकुण्डलिनी स्वकीय मुखसे स्वयंभू लिङ्ग मुखको आवृत करके निद्रिता रहती हैं। इसी कुलकुण्डलिनी शक्तिसे मधुर मधुर शब्द निकलता है जिससे अकारसे लेकर क्ष पर्यन्त समस्त शब्द और कोमल-काव्य, बन्धकाव्य, गद्य-पद्यात्मक अन्यान्य वाक्य, उनके विशेष भेद, अति भेद आदि सभी शब्द-सृष्टिकी उत्पत्ति होती है। कुलकुण्डलिनीके श्वासोच्छ्वासद्वारा संसारमें जीवके प्राणकी रक्षा होती है। ऐसी विद्युत्प्रतिभ कुलकुण्डलिनी शक्ति मूलाधार पद्ममें विराजमान है जिसका ध्यान करनेसे योगी अनन्त फलोंको प्राप्त कर सकते हैं। इस चक्रके ध्यानका बहुत माहात्म्य है, यहां उसका विस्तार नहीं किया जा सकता।

द्वितीय स्वाधिष्ठानचक्र लिङ्गमूलमें व्यवस्थित है। बं, भं, मं, यं, रं और लं—ये छः वर्ण उसके छः दल-पर प्रतिष्ठित हैं। इसका वर्ण रक्त है, उसमें बालाख्य सिद्धकी स्थिति है। इस चक्रकी अधिष्ठात्री देवीका नाम राकिणी है। जो साधक इसका ध्यान करता है वह ऐसे शास्त्रोंकी पूर्ण रूपसे व्याख्या करनेमें समर्थ हो जाता है जिनको उसने कभी भी श्रवण नहीं किया था।

तृतीय मणिपूरक चक्र नाभिमूलमें है। डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं और फं—ये दश सुवर्णमय वर्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिसके दलोंपर शोभायमान हैं, जहांपर रुद्राक्ष-सिद्ध लिङ्ग सब प्रकारके मङ्गलोंको दान कर रहे हैं, जहांपर धार्मिका लाकिनी देवी विराजमान हैं।

चतुर्थ अनाहत चक्र हृदयमें स्थित है। कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं और ठं—ये द्वादश वर्णयुक्त अति रक्तवर्ण दल हैं, हृदय अति प्रसन्न स्थान है। वहां यं वायु-बीज स्थित है। इस अनाहत पद्ममें अति तेजस्वी रक्तवर्ण बाण-लिङ्गका अधिष्ठान है और पिनाकी नामक सिद्ध लिङ्ग और काकिनी नामक अधिष्ठात्री देवी यहां स्थित है। हृत्पद्मके बीचमें जो इस चक्रका ध्यान करता है, देवाङ्गनाएँ सदा उसकी सेवा करनेमें तत्पर रहती हैं।

पञ्चम विशुद्धचक्र कण्ठमें स्थित है। उसका वर्ण सुन्दर सुवर्णकी तरह है। उसमें अं, आं, इं, ईं, उं ऊं. ऋं, ॠं, लृं, लॄं, एं, ऐं, ओं, औं, अं और अः—ये षोडश वर्ण सुशोभित हैं। इस पद्ममें छगलाण्ड नामक सिद्ध और शाकिनी नाम्नी देवीकी स्थिति है। जो मनुष्य इस चक्रका नित्य ध्यान करते हैं वे संसारमें पण्डित और योगीश्वर कहलाते हैं।

छठवां आज्ञाचक्र भ्रूद्वयके मध्यमें स्थित है, यह शुभ्रवर्ण है। हं-क्षं-युक्त इसके दो दल हैं। शुक्ल नामक महाकाल इस पद्मके सिद्ध लिङ्ग और हाकिनी नाम्नी महाशक्ति इस चक्रकी अधिष्ठात्री देवी हैं, इस पद्ममें शरद कालके चन्द्रमाकी तरह निर्मल अक्षर ठं बीज प्रकाशित है जिसके साधनसे परमहंस पुरुष कभी अवसन्नताको प्राप्त नहीं होते। आज्ञाचक्रका माहात्म्य तत्त्वदर्शी ऋषियोंने शास्त्रोंमें बहुत प्रकारसे वर्णन किया है। जो मनुष्य आज्ञाचक्रमें मन-स्थापनपूर्वक धारणाका अभ्यास करते हैं वे अपने सब वासना-बन्धोंको छिन्नभिन्नकर परमानन्दको प्राप्त हुआ करते हैं। मूलाधार, स्वधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध चक्रोंके ध्यानमें जो पृथक् पृथक् फल शास्त्रोंमें वर्णित हैं, वे सब फल केवल आज्ञाचक्रके ध्यान-से प्राप्त होते हैं, अतएव यह चक्र सर्वश्रेष्ठ है।

इस आज्ञाचक्रके ऊपर जो तालुमूल है उसमें सुशोभित सहस्रदलकमल है जहां छिद्रसहित सुषुम्ना नाड़ीका मूल स्थान है। उस सहस्रदल कमलके मूलदेशमें एक त्रिकोणाकार यन्त्र अधोमुख स्थित है। उसके मध्यमें जहां पर सच्छिद्र सुषुम्ना नाड़ीका मूल है उसीको ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं; उसीका नाम मुक्तिद्वार भी है। ब्रह्म-रन्ध्रमें मन अर्पण करके यदि अर्ध क्षण भी साधक स्थित रह सके तो वह सब पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त कर लेता है। इस ब्रह्मरन्ध्रके ऊपर सहस्रदलकमल स्थित है। वह मुक्तिप्रद स्थान ब्रह्माण्डरूप देहके बाहर है। उस स्थानका नाम कैलाश है, और जहां देवादिदेव महादेव विराजमान हैं वही महेश्वर नामक परमशिव हैं। उनको नकुल भी कहते हैं। वे क्षय-वृद्धि-विवर्जित हैं, सदा एकरूप हैं। इस सहस्रदल-कमलमें जो साधक अपनी चित्तवृत्तिको लय करता है वह अखण्ड ज्ञानरूपी निरञ्जन परमात्माकी स्वरूपता-को प्राप्त कर लेता है। इस सहस्रदलसे विगलित पीयूषधाराका जो योगी निरन्तर पान करता है वह अपनी मृत्युको मारकर कुलजयद्वारा चिरञ्जीवी हो जाता है। इस सहस्रदल-कमलमें कुलरूपा कुण्डलिनी महाशक्तिका लय होनेपर चतुर्विध सृष्टिका भी परमात्मामें लय हो जाता है।

मूलाधार-पद्मसे उठी हुई कुलकुण्डलिनी क्रमशः षट्चक्र भेदन करती हुई इसी सहस्रदल-पद्ममें आकर शिवमें लयको प्राप्त हो जाती है। इस अवस्थामें योगी अखण्ड ज्ञानरूप निरञ्जन परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

प्रथम चक्रमें केवल प्रकृतिका प्राधान्य, मध्यके चक्रोंमें युगल मूर्त्तिका प्राधान्य और अन्तके चक्रमें अद्वैत-भावापन्न पुरुष भावका प्राधान्य समझने योग्य है। षट्चक्रभेदन मन्त्र, ज्योति और नाद तीनोंकी सहायतासे होता है। तीनों अधिकार उत्तरोत्तर उन्नत हैं। मन्त्र, हठ, लय, राज, चारो योगोंके ज्ञाता श्रीगुरुदेवकी कृपासे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही इस योगके अधिकार-क्रम और विभिन्न क्रिया-कौशलका उपदेश प्राप्त हो सकता है। वेद और तन्त्रमें ये क्रियाएँ अति गोपनीय हैं। साधकोंके प्रवृत्त्यर्थ संकेत मात्रसे इनका उल्लेख किया गया है। यह विद्या गुरुकृपागम्य है।

लययोगके सप्तम अङ्गका नाम ध्यान है। अवलोकनकी सहायतासे ध्यानवृत्तिद्वारा ध्येयके साक्षात्कारको ध्यान कहते हैं। विभिन्नयोग-मार्गमें विभिन्न ध्यानका वर्णन है। लययोगमें जो ध्यान-विधि है, उसको सूक्ष्म-ध्यान अथवा विन्दु-ध्यान कहते हैं। शक्ति-चालिनी मुद्रा और योनिमुद्रा दोनों विन्दु-ध्यानकी सिद्धिमें परम सहायक हैं।

साधनद्वारा कुलकुण्डलिनी महाशक्तिका जब उद्बोधन होने लगता है तब वे दर्शन-पथमें आती हैं, परन्तु प्रकृतिके स्वाभाविक चाञ्चल्यके कारण वे अस्थिर रहती हैं; क्रमशः महाशक्तिका परम पुरुषके साथ संयोग होनेपर प्रकृतिका चाञ्चल्य दूर हो जाता है।

ब्रह्म अथवा ब्रह्मशक्ति अतीन्द्रिय अथवा रूप-विहीन होनेपर भी अधिदैव ज्योतिके रूपमें साधकको लयोन्मुख करनेके लिये युगल रूपमें दर्शन देते हैं, उस अधिदैव-ज्योति-पूर्ण विन्दुमय ध्यानको विन्दु-ध्यान कहते हैं। मुद्रा आदिकी सहायतासे ध्यान प्रारम्भ करके निश्चल-निर्द्वन्द होकर ध्यानकी दृढ़ता की जाती है।

स्थूल-ध्यानसे शतगुण अधिक फल ज्योति-ध्यानमें है और ज्योति-ध्यानसे शतगुण अधिक फल विन्दु-ध्यानमें है। विन्दु-ध्यान अति सूक्ष्मातिसूक्ष्म होनेसे बहुत कठिन और परम गोप्य है। श्रीगुरु-कृपा और महामायाके प्रसादसे विन्दु-ध्यानकी प्राप्ति होती है। योगसाधनचतुष्टयके तत्त्ववेत्ता योगिराज सद्गुरु ही विन्दु-ध्यानके सदुपदेशद्वारा साधकको कृतकृत्य कर सकते हैं।

प्रत्याहारकी दृढ़ता होते ही नाद-श्रवण होना प्रारम्भ होता है। नादकी सहायतासे धारणासिद्धि और धारणाकी क्रमोन्नतिके साथ ज्योतिकी क्रमोन्नति होती है। निहार, धूम्र, खद्योत, चन्द्र, अग्नि, सूर्य आदि भेदसे ज्योतियोंका विकाश पञ्चतत्त्व-भेदानुसार होता है। धारणा-भूमिकी दृढ़तासे इनकी दृढ़ता होती है और अन्तमें धारणाकी सिद्धावस्थामें प्रकृति-पुरुषात्मक आत्मदर्शन विन्दु-ध्यानमें होता है। विन्दु-ध्यान ही सगुण रूपका रहस्य है; अनेक जन्म-जन्मान्तरके साधनसे योगीको विन्दु-ध्यानकी सिद्धि होती है।

लय-योगकी अष्टम क्रियाका नाम लय-क्रिया है। जिसके साथ लय-योग-समाधिका घनिष्ठ सम्बन्ध विद्यमान है, जो सूक्ष्म योगक्रियाएँ ध्यान-की सिद्धि कराकर साधककी समाधि-सिद्धिमें सहायक होती हैं, अलौकिक भावपूर्ण अति दुर्लभ, अति गोप्य उन क्रियाओंको महर्षियोंने लय-क्रिया कहा है। लय-क्रिया ही लय-योगका प्राणरूप है और समाधि सिद्धिका कारण है। षट्चक्र, षोडश आधार व्योमपञ्चक, उच्छ्वास पीठ इनको जाननेसे लय-योगमें सिद्धि प्राप्त होती है। लयक्रियाके द्वारा ध्यानसिद्धि, समाधिसिद्धि होती है। लय-क्रियाके अन्दर बहुत प्रकारकी क्रियाओंका वर्णन है, यहां केवल विशेष विशेष आवश्यकीय क्रियाओंका वर्णन किया जाता है।

व्योमजयी क्रिया

आकाशका गुण शब्द है। शब्द-सृष्टि अलौकिक और अनन्त है। ओंकाररूप शब्दात्मक ब्रह्मसे सप्तस्वर, तदनन्तर सप्तस्वर श्रुति, मूर्छना, ग्राम आदिकी सहायतासे शब्द-सृष्टिका अनन्त विस्तार है। व्यष्टि-शब्दका विचार न करके शब्द-रस-बोधसे वासनाको हटाकर दिव्य शब्दका अनुगमन और शब्दके साथ मन लय करनेसे यह व्योमजयी क्रिया होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आशुगजयी क्रिया—

वायुकी तन्मात्रा स्पर्श है। स्पर्श-सुख-ग्राहक त्वचा है। विशेष विशेष स्थानोंमें विशेषता भी रहती है। विशेष स्थानोंको मर्म-स्थान कहते हैं। मर्म-स्थानके तीन भेद हैं—मारक, उत्तेजक और मोहक। मारकसे उत्तेजक और उत्तेजकसे मोहकका प्राबल्य है, जहां तीनों मर्म-शक्तिका समावेश होता है, वह मर्म जीवके लिये अजेय होता है। मनको स्पर्श-सुख, विषय-रस और प्रमादसे रहित करके, धारणा-ध्यानकी सहायतासे दिव्य विषयवती सूक्ष्म प्रकृतिका अनुसरण करके मन लय करनेसे यह आशुगजयी क्रिया होती है।

प्रभाजयी क्रिया—

अग्निकी तन्मात्रा रूप है। नामरूपात्मक विश्व होनेके कारण यह तन्मात्रा बलवती है। दर्शनमात्रसे रूप मोहित किया करता है। पञ्चतन्मात्रा जयी क्रियाका अति एकान्त गुप्त स्थानमें रहकर साधन करना होता है। अति प्रियसे प्रिय रूपको सम्मुख रखकर मनको वासना और प्रमादरहित करके दिव्य विषयवान् रूपमें मन लय करनेसे यह प्रभाजयी क्रिया होती है।

रसजयी क्रिया—

पञ्चभूतोंमेंसे जलकी तन्मात्रा रस है। रसना-इन्द्रिय रसका धारक है रसना दो कार्य-तत्पर है, जहां दो कार्य होंगे वहां शक्तिकी प्रबलता होगी; इस कारण रसनाकी प्रबलता है। रसना जय कर लेनेसे रस जय होता है जिससे मनोजय हो सकता है। रसनाके अग्रभागमें संयम करे और साधनके समय विषयसे मनको हटाकर कामनाजयपूर्वक दिव्य रसास्वादनमें मनको लय करे। गुरूपदेशद्वारा इस तरह साधन करनेसे साधक जितेन्द्रिय होता है।

सुरभिजयी क्रिया—

पृथिवी-तत्त्वकी तन्मात्रा गन्ध है। शरीर पार्थिव होनेके कारण दिव्य गन्ध सदा ही विद्यमान रहता है। नासिका घ्राणका ग्राहक है। चन्द्र-दर्शन करते हुए इस क्रियाका साधन किया जाता है। विषयरागरहित होकर दिव्य गन्धमें मन लय करनेसे अथवा जितेन्द्रिय होकर किसी सुगन्धमें मन लय करनेसे इस क्रियाका साधन होता है।

अजपा क्रिया—

कुलकुण्डलिनी महाशक्तिसे उत्पन्न हुई प्राणोंको धारण करनेवाली जो अजपा गायत्री है वही महाविद्यारूपिणी प्राणविद्या है, उसके भेदोंको जान लेनेसे योगी सर्वज्ञ होता है। सोऽहं मन्त्रका जप करते हुए निरन्तर अजपा गायत्रीकी उपासना करे। मन्त्रमें मनका लय करे, तब प्राण और मन दोनों ही लय हो जाते हैं। गायत्रीकी त्रिकाल उपासनाके समान इसके भी तीन भेद हैं—प्रथम मन्त्र और प्राणकी स्थिति, दूसरा प्राण और मन्त्रार्थकी स्थिति, तीसरा भाव और मनकी स्थिति; तदनन्तर आत्मसाक्षात्कार होता है।

ओंकार क्रिया—

तैलधाराकी तरह अविच्छिन्न, विशाल घण्टाकी तरह ध्वनिविशिष्ट जो ॐकार है उसका कोई अङ्ग भी उच्चारण नहीं किया जाता, वह अव्यय ईश्वररूप है। नाद-क्रियामें उन्नति प्राप्त करनेपर गुरु शिष्यको इस क्रियाका उपदेश देते हैं। इस क्रियाके दो भेद हैं—आधारसे जब ध्वनि उत्पन्न होकर सहस्रारमें जा मिलती है उस समय ध्वनिके साथ मनको लय करनेसे प्रथमता होती है, दूसरी उन्नत अवस्था यह है कि कूर्म-चक्र और आज्ञाचक्र इन दोनोंमें संयोग कराकर जहां नाद उत्पन्न हो वहीं ठहर जाय, नादमें मन लय करके आत्माराम हो जाय, यह क्रिया सब शास्त्रोंमें गोपनीय है।

शक्ति-धारिणी क्रिया, प्रातिभदर्शन, ज्योतिष्मती-दर्शन, चक्रक्रिया, ब्रह्मदण्डधारणक्रिया, लय-बोध-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्रिया, प्राणसिद्धि-क्रिया, कूटस्थदर्शनक्रिया तथा तत्पददर्शन आदि और भी अनेक क्रियाएं हैं। यहांपर केवल आवश्यक क्रियाओंका उल्लेख किया गया है, विशेष जानकारीके लिये अलग अध्ययन किया जाय।

लययोगके अन्तिम नवम अङ्गका नाम समाधि है। जिस तरह जलका विन्दु समुद्रमें मिलकर समुद्रसे अभिन्न हो जाता है, उसी प्रकार ध्येयरूपी परमात्मामें संलग्न हुआ अन्तःकरण शेषमें उसी ध्येय परमेश्वरमें अभिन्नरूपको धारण कर लेता है, इस अवस्थाको समाधि कहते हैं। लययोगकी सर्वोत्तम समाधिको महालय कहते हैं। नाद और विन्दुकी सहायतासे इस समाधिकी सिद्धि होती है। प्रथम नाद और विन्दुका एकत्व होकर उनके साथ मन भी लय हो जाता है। उसी समय दृश्यका नाश होकर द्रष्टाका स्वरूप प्रकट हो जाता है, इसी सर्वोत्तम साधनको समाधि कहते हैं। श्रीमद्गुरुदेवकी कृपासे साधक इसे प्राप्तकर कृतकृत्य हो जाता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

प्रार्थना

प्रभो! जीवनकी यह नैया, कभी तट पर लगा देना।
इसे संसार-सागरकी, तरङ्गोंसे बचा लेना॥ ध्रुव॥

यहाँ मद-मोह-कामादिक, मकर मुख खोले बैठे हैं।
दयाकर! इनके पञ्जेसे, दया करके छुड़ा लेना॥ १॥

विरह-संयोग-गिरिमाला, की चोटोंसे हुई जांजर।
भरा तृष्णाका पानी है, इसे भगवन्! खिवा लेना॥ २॥

चले अविवेककी आंधी, न कुछ भी सूझ पड़ता है।
भटकता हूँ अँधेरेमें, मेरे ध्रुवको दिखा देना॥ ३॥

नहीं कोई यहाँ अपना, जिसे रोकर पुकारूँ मैं।
कहां भगवान हो मेरे, मेरा पतवार ले लेना॥ ४॥

मेरे पापोंसे यह भारी, फँसी है भौंर भयकारी।
किसी विधि घाट अपने तू, इसे "श्रीहरि" लगा लेना॥ ५॥

श्रीहरि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हृदयाकाशके उज्ज्वल नक्षत्र

(भक्ति)

मनुष्य, संसारके अखिल-शास्त्रोंका ज्ञाता होकर भी भक्तिके मधुर दिव्यालोकसे रिक्त रह सकता है। कारण कि 'भक्ति' मस्तिष्ककी नहीं, परन्तु हृदयकी वस्तु है।

(२)संसार,जिसके लिये उन्मादिनी विस्मृतिकी अदृश्य रङ्गभूमिमें अभिनय कर रहा है, वह 'प्रेम' भक्तिके बिना सौरभ-हीन प्रसूनवत् है। भक्ति ही प्रेमका आत्मा है। प्रेम, चाहे प्राकृतिक (Material) हो चाहे आत्मिक (Metaphysical) भक्तिके बिना प्रतिष्ठित नहीं हो सकता।

(३)भक्तिका एक अर्थ है सेवा करना। मानव-जाति किसकी सेवा करे? क्या मनुष्य-दृष्टिसे मनुष्यकी? यह नीच भाव है, पतनोन्मुख-गति है। तब मनुष्यका सेव्य ऐसा होना चाहिये जो उसको परमोच्च आनन्दोल्लसित स्थलमें पहुंचा दे। वह सेव्य परम पावन महाप्रभुके अतिरिक्त और कौन है?

(४) मनुष्यको वह नहीं वरन् 'उसको' मानव-देहमें अनुभव करके मनुष्यकी भक्ति करना उसकी भक्ति करना है। अहा! मनुष्य इष्ट-देवकी एक प्रत्यक्ष प्रतिमा है, यदि उससे दिव्यत्व प्रकट हो रहा है। वे धन्य हैं जिनको दिव्य-मानवकी सङ्गति प्राप्त होती है।

(५)मनुष्यकी हृदय-मुकुलिकाको प्रस्फुटित करनेके लिये, भक्ति ही प्रातःकालीन मलय-समीर है। वह (मनुष्य) भक्तिके द्वारा ही स्वयं स्वर्ग-राज्यमें विचरण करके आनन्दोन्मत्त बनानेवाले वातावरणसे समीपस्थ जगत्को, नहीं नहीं अखिल विश्वको आलोकित कर देता है।

(६) एकान्त स्थानमें कभी रोना, कभी खिलखिलाकर हँस देना तथा एक उन्मत्तकी तरह मतवाला होकर नाच नाचकर हथेली बजाना आदि, भक्ति-उन्मादके पूर्व-लक्षण हैं। यह उन्माद भाग्यवान् पुरुषोंको ही प्राप्त होता है।

(७) संसारकी उस लज्जाको जो भक्तिके आवेशमें बाधक हो, दूरातिदूर फेंक देना चाहिये।

(८)भक्ति-सिन्धुकी विमल तरङ्गोंपर क्रीड़ा करते हुए भक्तिके शब्द, मर्म-स्पर्शी, हृदय-द्रावक, और प्रेमोन्माद-उत्पादक होते हैं। परन्तु सबके लिये नहीं केवल उनके लिये ही जिनके हृदय-निकुञ्जमें भक्तिके सुरभित पवनका झोंका आ चुका है।

(९)भक्त और अभक्त दोनों उस एक ही विश्व-प्रयको प्यार करते हैं। पहिला अन्तर-दृष्टिसे और दूसरा बाह्य-दृष्टिसे। भेद केवल दृष्टिमें ही है। भक्तकी दृष्टि जिस मनोरम दिव्य-स्थलपर रमण करती है, वहाँ न पिता, पिता है, न पुत्र, पुत्र है, न स्त्री,स्त्री है, न बन्धु, बन्धु है! वहाँ क्या है? बस वही एक—'सूत्रम्-मणिगणे'पु' कौन? वही मन-मोहन इष्ट-देव!

(१०)गृहस्थकी इष्टदेवी कौन है? स्त्री! सांसारिक पुरुष जितने भी कार्य करता है, उन सबके पीछे अज्ञात और ज्ञातरूपसे वही गृह-मोहिनी विद्यमान है। भक्तिका यही सच्चा स्वरूप है। जबतक कि इसी प्रकारसे हमारे सब कार्य उस मनोहर प्रभुके लिये न बन जायँ, तबतक भक्तिका दम भरना झूठा है।

(११)स्वर्गीय उपवन-विहार, स्वतन्त्रता, मुक्ति, जीवन्मुक्ति और स्वराज्य भक्तिके सरस मधुर फल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं। वे मूर्ख हैं जो इसकी अवहेलना करके इनमेंसे किसीको चाहते हैं।

(१३)माता, पिता, स्त्री, पुत्र, बन्धु, मित्र आदि क्या हैं? उस प्यारेसे बातें करनेके लिये टेलिफोन-यन्त्र। भक्तिके कान खुल जायं तो वह महाप्रभु उसी प्रकार उत्तर देता है, जिस प्रकार हम बातें करते हैं।

(१४)इष्टदेव निराकार है,यह सत्य है। इसमें लेश-मात्र भी सन्देह नहीं। परन्तु 'भक्ति' एक ऐसा दिव्यभाव है, जिसके कारण उसको प्रकट होना पड़ता है। उस विश्व-प्राण जगन्मोहनके आविर्भाव-को देखनेके लिये भी सांसारिक आंखें नहीं वरन् भक्तिकी ही आंखें चाहिये।

(१५) संसारमें भी एक गृहाधिपति स्वामी, विश्वसनीय सेवकपर विश्वास करके अपने समस्त कोशकी तालियोंका गुच्छा उसको सौंप देता है। वह पुनः देखता भी नहीं कि वह क्या कर रहा है। यही बात तो उस विश्वपति वसुधा-नन्दनमें है। वह सत्य-भक्तको विश्वके भाण्डारकी कुञ्जी समर्पण कर देता है। परन्तु भक्त क्या कुछ कम रहता है? वह कहता है:—

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द! तुभ्यमेव समर्पये।'

(१६) भक्तिकी दृष्टिमें राजा और रङ्कमें वाह्य रूपान्तर है। उनके अन्तरैक्यमें विश्व सत्य साक्षी है। सेवक और सेव्यमें सेव्यकी प्राप्तितक भेद है। जहां सेवकने सेव्यके ऊपर अपना 'अहम्' न्योछावर किया, फिर 'वह' ही वह है। परन्तु—

'सत्यपि भेदापगमे नाथ! तवाहं न मामकीनस्त्वम्।'

हृदयसे निकलता रहता है।

(१७)'वह' दिखलायी नहीं देता, वह नहीं मिलता, ऐसा कहना भक्ति-शून्यता है। यह विश्व उसका है, वह विश्व-विहारी है, तब वह यहां है, इसमें सन्देह कैसा? हम सांसारिक वैभवकी प्राप्तिके लिये प्राणों-पर खेल जाते हैं। तब वह अनन्त वैभव, हमें शय्यापर पड़े हुए मिल जाय, ऐसा हम क्यों चाहते हैं? एक बार उसकी पावन भक्तिके आंसुओंसे अपना वक्षःस्थल आर्द्र तो कर देखें, उसका हृदय कितना द्रवित होता है।

(१८)भक्तिमें तीन बातें अवश्यम्भावी हैं १—सेवा, २—संगति, ३—दान।

सेवा—प्यारेके विश्व-रूपकी।

सङ्गति—असङ्ग अन्तरात्माकी।

दान—निज सर्वस्वका।

(१९) पुनः वह अनन्त सौन्दर्य-मय भक्ति-वश्य प्रेममूर्त्ति, यदि तुम्हारी आर्द्र आंखोंको अपने मृदुल, दिव्य पीतपटसे न पोंछे तो समझो कि अभी, प्यारा........साथ आंखमिचौनी खेल रहा है।

(२०)रसिकविहारी आत्मदेव, जिस पवित्रकाल-में अनिन्द्य-सुन्दरी सात्त्विक प्रकृतिके साथ विहार करते हैं, उस समय ही उस रमणीयाके विमल-गर्भसे भक्तिदेवीका आविर्भाव होता है। तब प्रेम-चन्द्र अपनी पूर्णकलाओंसे हृदयाकाशमें उदय हो जाते हैं। हृत्-निकुञ्जमें इन्द्रियरूपी गोपियां, उसकी विश्व-विमोहिनी रसीली तानपर अपूर्व हाव-भावके साथ नाचने लगती हैं, निकुञ्ज आलोकित हो उठता है! श्याम-विहारी इष्ट-देव भी श्यामघनमें कोटि विद्युत्सम दमक जाते हैं। तब वे (इन्द्रियरूपी गोपियां) चमत्कृत होकर सुमधुर स्वरसे गाने लगती हैं:—

'त्वमसि मम जीवनम् त्वमसि मम भूषणम्।'

ब्रह्मदत्त शर्म्मा "शिशु"

श्रेय और प्रेय

(ले०—साहित्योपाध्याय पं० ब्रह्मदत्तजी शास्त्री काव्यतीर्थ एम० ए०, एम० ओ० एल०, एम० आर० ए० एस०)

उपनिषदोंमें 'श्रेय' और 'प्रेय' नामक दो मार्गोंका वर्णन आता है। 'श्रेय' शब्द गुणवाचक विशेषण 'प्रशस्य' शब्दका रूपान्तर है। प्रशस्यका अर्थ है प्रशंसनीय (Praiseworthy) इसीसे अतिशयार्थमें तरप् (तर) प्रत्यय लगानेसे 'प्रशस्यतर' शब्द बनता है। तरप् प्रत्ययका ही समानार्थक एक प्रत्यय ईयसुन् (ईयस्) है। 'प्रशस्यस्य श्रः' इस पाणिनीय सूत्रके अनुसार 'प्रशस्य' शब्दके स्थानमें 'श्र' आदेश हो जाता है और उसमें ईयस् प्रत्यय लगनेसे 'श्रेयस्' शब्द सिद्ध होता है। इस शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ होता है 'अत्यन्त प्रशंसनीय' इसी प्रकार 'प्रिय' शब्दमें ईयस् प्रत्यय लगनेसे और 'प्रिय' शब्दके स्थानमें 'प्र' आदेश करनेसे तथा गुण-सन्धि होनेसे 'प्रेयस्' शब्द सिद्ध होता है। 'प्रेयस्' शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ होता है। 'अत्यन्त प्रिय'।

यह तो इनकी व्युत्पत्तिकी बात हुई। अब तनिक इनके अर्थ और शास्त्रीय वर्णनकी ओर भी दृष्टिपात करना चाहिये। संसारमें दो प्रकारके मार्ग दिखलायी देते हैं। व्यक्तियोंकी भांति जातियां भी इन्हीं दोमेंसे किसी एक पर चला करती हैं। इतना ही नहीं किन्तु यह सारा संसार भी कभी एकको और कभी दूसरेको अपनी प्रगतिके निमित्त चुन लिया करता है और उसीपर आरूढ़ हो जाता है। संसारके प्रभावशाली विद्वानोंकी और जातियों-की रुचि भी समय-समयपर इन्हीं दोनों विभिन्न अथवा परस्पर अत्यन्त भिन्न मार्गोंकी ओर झुक जाती हैं। संसारकी सभ्यताके खरे-खोटेपनकी कसौटी भी इससे बढ़कर अन्य नहीं है। निदान वर्त्तमान समयकी सांसारिक सभ्यताका झुकाव अत्यन्त तीव्रताके साथ प्रेयमार्गकी ओर हो रहा है। यह मार्ग भारतीय प्राचीन तत्त्वज्ञोंकी दृष्टिसे दूसरी श्रेणीका समझा गया है। प्रधान मार्ग उनकी दृष्टिसे श्रेयमार्ग ही है। अतः इस लेखमें कठोपनिषद्-के आधारपर प्रथम इन दोनों मार्गोंका स्वरूप-निरूपण किया जायगा। पश्चात् श्रेयमार्गकी उपादेयता बतायी जायगी।

नचिकेता मृत्युके घर पहुँच चुके हैं। मृत्यु कार्यवश घरपर नहीं है। नचिकेता तीन दिन तीन रात बिना भोजन उनके घरपर चिन्तातुर होकर बिता चुके हैं। अब मृत्युदेव अपने घर लौट आये हैं। अपने सेवकोंसे नचिकेताके कष्टकी कथा सुनकर मृत्युदेव अतिथि-धर्मका पालन न कर सकनेके कारण शोक-सन्तप्त हो रहे हैं। जिसके घरपर अतिथि इस प्रकार भूखा-प्यासा पड़ा रहे, उसके चित्तको शान्ति कैसे हो? निदान, मृत्युदेवने नचिकेताको प्रसन्न करनेके लिये उन्हें तीन वरदान देनेकी इच्छा प्रकट की; क्योंकि तीन रात्रियों तक ही नचिकेता उनके घरपर भूखे-प्यासे पड़े रहे थे।

मृत्युदेव बोलेः—

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे-
ऽनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु,
तस्मात् प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ॥

'हे ब्रह्मन्! तुम नमस्कार करनेके योग्य अतिथि हो। मेरे घरपर तीन रात्रियों तक बिना भोजन किये पड़े रहे। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं। मेरा कल्याण हो, अतिथि-सत्काररूप धर्मका लोप हो जानेसे मेरा अनिष्ट न हो। मुझसे एक एक रात्रिके लिये एक एकके हिसाबसे तीन वर मांगलो!'

नचिकेता बोलेः—

शान्तसङ्कल्पः सुमना यथा स्यात्
वीतमन्युर्गौतमो माभिमृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत् प्रतीत
एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे॥

'हे मृत्युदेव! तीनों वरोंमेंसे सबसे प्रथम तो मुझे यह वर दीजिये कि मेरे पिता महर्षि गौतम मुझसे क्रुद्ध न हों और उनका मन शान्त हो जाय तथा वे पूर्ववत् प्रसन्नचित्त हो जायँ, और जब मैं आपके यहांसे लौट कर जाऊं तो वे मुझसे प्रसन्न-चित्त होकर बातचीत करें।'

इसप्रकार प्रथम वरदानमें नचिकेताने एक सुपुत्रकी तरह अपने पूज्य पिताकी प्रसन्नताके लिये प्रार्थना करके इस बातका परिचय दिया कि पुत्रके लिये पितृ-परितोषण एक प्रधान धर्म है। गोस्वामी-जीने भी कहा है 'पितु आयसु सब धर्मक टीका' पिताकी आज्ञा सब धर्मोंका तिलक है। मृत्युने नचिकेताको प्रथम वर बिना किसी ना-नूके तत्काल दे डाला।

पुनः नचिकेता दूसरा वर माँगनेके लिये बोलेः—

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति
न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनाया पिपासे
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।

'सुनते हैं कि, स्वर्गलोकमें किसी प्रकारका भी भय नहीं है। न वहां आप (मृत्यु) हैं, न वृद्धावस्थाका डर है। भूख और प्यास दोनोंको पारकर पुरुष शोकके परे पहुँचकर आनन्द प्राप्त करता है।'

यहांपर श्रुतिने जो स्वर्गका स्वरूप बतलाया है उसमें निम्नलिखित बातें हैंः—

१-भयका अभाव, २-मृत्युका अभाव, ३-जरा-वस्थाका अभाव, ४-भूख-प्यासका अभाव, ५-शोकका अभाव, ६-मोदकी प्राप्ति। इन्हीं बातोंकी पुष्टि स्मृतियोंसे भी होती है। स्वर्गमें तस्करादिका भय सम्भव नहीं क्योंकि वहां उत्तम कर्म करके देवत्व-को प्राप्त व्यक्ति ही पहुंचते हैं। आधि-व्याधिका भय भी वहां सम्भव नहीं क्योंकि सूक्ष्म शरीर होनेसे ये उपद्रव वहां सता नहीं सकते। मृत्युका अभाव तो देवताओंके नामसे ही स्पष्ट झलकता है। अमर, अमर्त्य, Immortal आदि नाम ही इस अर्थके द्योतक हैं। निर्जरादि तथा त्रिदशादि नाम भी देवताओंकी तीन ही दशा (बाल्य, कौमार तथा यौवन) बताते हैं। वहां चतुर्थ दशा अर्थात् बुढ़ापे-का तो नाम भी नहीं है। भूख-प्यासका अभाव भी अन्न तथा जलदानका प्रतिपादन न होनेसे स्वयं-सिद्ध ही है। हां, शास्त्रोंसे यह अवश्य सिद्ध है कि 'अमृत' नामका एक पदार्थविशेष—जोकि आहुतिसे सिद्ध होता है—देवताओंका भोजन है। पीयूष, सुधा आदि भी उसीके नाम हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि घृत या साकल्यहीका नाम अमृत है, नहीं तो घृत या साकल्यका सेवन करके सभीको देवत्व अति सुलभ हो जायगा। फिर वहांसे 'स्थान नहीं है' (No vacancy) की पुकार मचेगी। अमृत नाम तो उसका है जो देवताओंके मुख अग्निमें मन्त्रोंद्वारा पड़े हुए घृतादिका सूक्ष्म सार खींचकर बनता है और उसीका उपभोग अन्तरिक्षद्वारा देवलोक-तक पहुंचकर देवगणको प्राप्त होता है। शोकका अभाव और आनन्दकी प्राप्ति भी स्वर्गलोकका अङ्ग है, अन्यथा शोक-दुःखमय इस संसारसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवलोकका भेद ही क्या रह जाता ? तदुपरान्त नचिकेताने स्वर्ग-प्राप्तिके मुख्य साधन यज्ञाग्निको सीखनेका वर मांगा है, और मृत्युदेवने प्रसन्नतासे उस अग्निको बतलाया है तथा यह भी कथन किया है कि यह अग्नि अर्थात् यज्ञ तेरे ही नामसे प्रतिष्ठित होगा ।

अब मृत्युने नचिकेतासे तीसरा वर मांगनेको कहा। उसपर नचिकेता बोलाः—

ये यं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।
एतद् विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः ॥

'हे मृत्युदेव ! तीसरे वरद्वारा मैं आपसे इस बातका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूं कि मृत्युके पश्चात् मनुष्य रहता है या नहीं ? कोई कहते हैं 'रहता है' कोई कहते हैं 'नहीं रहता'। अतः निश्चय-के लिये यह सन्देहयुक्त विषय पूछा है। सो कृपा करके बतलाइये !

इसप्रकार नचिकेताने 'आत्मविषयक' प्रश्न मृत्युके सम्मुख उपस्थित कर दिया। वास्तवमें इसी गांठको सुलझानेके लिये वह मृत्युके पास गया है। पितृ-प्रसन्नता तथा स्वर्गसाधन कर्मकाण्डका ज्ञान, ये दोनों बातें नचिकेताने प्रथम तथा द्वितीय वरोंसे मांगी पर इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि नचिकेताकी दृष्टिमें ये दोनों बातें 'आत्मज्ञान'से बड़ी हैं। किन्तु जैसे कोई चतुर पुरुष छोटी छोटी बातोंको पहिले माँग लेता है और सबसे बड़ीको अन्तमें मांगता है, अथवा जैसे योधा लोग साधारण शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग आरम्भमें करते रहते हैं और तपस्या अथवा वरदानद्वारा प्राप्त दिव्यास्त्रोंको सबसे पीछे, अपने सबसे बड़े शक्तिशाली शत्रुपर ही छोड़ते हैं, ठीक इसी रीतिसे नचिकेताने भी यहांपर काम लिया है।

दूसरे शब्दोंमें, प्रथम तथा द्वितीय वरदानोंमें प्रेय-मार्गको ही पूछा है और अन्तमें इतनेसे तुष्ट न होनेके कारण श्रेय-मार्गको जाननेकी इच्छा प्रकट की है। स्पष्टताके लिये यों कहना ठीक होगा कि, जो मार्ग आत्मतत्त्वके ज्ञानका साधक हो वही श्रेय-मार्ग है। प्रेय-मार्ग भी श्रेय-साधन होनेसे ही एक मार्ग है। यदि श्रेयको सर्वथा हटा दिया जाय तो ऐसे प्रेय-मार्गको श्रुति तथा शास्त्रकार नहीं मानते। इसलिये अंगरेजीमें जिसे Materialism कहते हैं उसे प्रेयमार्ग कहना धोखा खाना है क्योंकि पाश्चात्य प्रकृतिवादमें स्वर्गादि परलोकोंकी कोई सत्ता ही स्थिर नहीं की गयी है।

नचिकेताकी श्रद्धाकी परीक्षा करनेके लिये उसकी श्रेय-विषयक जिज्ञासाकी वास्तविकता जाननेके लिये मृत्युदेव कहते हैंः—

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा
न हि सुज्ञेयमणुरेष धर्मः ।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व
मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥

'हे नचिकेता ! इन्द्राग्नि आदि देवताओंको भी इस विषयमें पहले सन्देह हुआ था (केनोपनिषद् तृतीय खण्ड) यह धर्म सरलतासे नहीं जाना जाता क्योंकि यह बड़ा सूक्ष्म है। हे: नचिकेता ! तुम इसको छोड़कर कोई अन्य वर मांग लो। मुझसे अधिक आग्रह मत करो।'

मृत्युने चाहा कि देखें इसकी श्रद्धा कहांतक है ! यदि साधारण जिज्ञासु होगा तो अन्य सांसारिक प्रलोभनोंमें फंसा रहेगा और यदि उत्कृष्ट अधिकारी सिद्ध होगा तो इसे आत्मज्ञानका उपदेश दिया जायगा।

(शेष फिर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेणु-विडम्बना

(लेखक—पं० श्रीतुलसीरामजी शर्मा 'दिनेश')

दोहा

अङ्ग नाम भूपालके, जन्मा बेनु कपूत।
महा क्रूर, कलही, कुटिल, अति कराल-करतूत॥

बेन निरन्तर धनुष-बाण कर धार शिकार किया करता,
निरपराध दुर्व्याध मृगोंके हँस हँस प्राण लिया करता।
अति सुकुमार बालकोंको वह निर्दय, निठुर सताता था,
आया आया हो जाता वह जिधर जिधर भी जाता था॥

करनेको अपना मन-रञ्जन केश पकड़ खींचा करता,
शिशु-मण्डलमें वह पापी जा उष्ण तैल सींचा करता।
वे चिल्लाते व्याकुल होकर वह फिर हँसने लग जाता,
राजा कुपित दुखित अति होता जब यह लीला सुन पाता॥

प्रजा-उपालम्भोंने नृपको विचलित व्यथित किया भारी,
सुत समझानेमें भूपतिकी निष्फल हुई क्रिया सारी।
चतुर्युक्तियां खेलीं नृपने सुत-रिपु पर न विजय पायी,
सज्जनता क्यों ग्रहण करे, जब दुर्जनता शिरपर छायी॥

राजा कहने लगे दुखित हो है कपूतका कष्ट महा,
है अपुत्रका रहना अच्छा, यह न जा सके कष्ट सहा।
बिना पुत्रका मनुज सुखी है. अपयश-अघसे रहित अहा,
है कुपुत्रका पिता दुखी जो गाली खाता नित्य महा॥

दोहा

जो अपयशकी हेतु वह, कौन काम सन्तान।
है वह आत्माके लिये, केवल रज्जु-समान॥

सोच सोचकर सुतकी सब करतूत, भूप दुःखित भारी,
वनमें जाकर करूं तपस्या नृपने यह मनमें धारी।
दिनकी भूख, निशाकी निद्रा, दोनोंने प्रस्थान किया,
मनमें अति वैराग्य छागया, घर मरघट अनुमान किया॥

एक दिवस आधीकी बेला रानी सूती छोड़ चले—
वनको, भूपति भजन-हेतु, बस, दुखड़े तबसे सभी जले।
जाता देखा नहीं किसीने भूपतिको उस काल वहां,
हुआ सवेरा, उठे लोग सब, देखा भूपति गये कहां!

व्याकुल-व्यग्र चले सब दिक् वे, पता न भूपतिका पाया,
जैसे ईश्वर दृष्टि न आता परदा मायाका छाया।
मन्त्री, मित्र, पुरोहित सब जन रोते हुए भवन आये,
घर-घरमें मच रहा शोक है शब्द छा रहा हा! हा! ये!

ऋषिगण सब एकत्र हुए यों देख प्रजा दुःखित भारी,
पर-दुखमें वे दुःखित होते जो होते पर-उपकारी।
आद्योपान्त वृतान्त भूपके जानेका सब बतलाया,
प्रजा-कष्टका ध्यान सहज ही ऋषियोंके उरमें आया॥

दोहा

बिना भूपके राष्ट्रमें, हो नाना उत्पात।
स्वार्थ-वश्य होकर करें, क्रूर सरलका घात॥
हो जायेंगे राज्यमें, दस्यु, चोर अधिकांश।
एक एकका नोचकर, खा जावेंगे मांस॥

सोच समझकर ऋषियोंने फिर राज्य बेनुको देनेका,
नाविक निश्चय किया वही बस राज्य-तरणिके खेनेका।
बेनु दुष्ट है, सभी जानते पर अब और उपाय नहीं,
है अधिकारी यही राज्यका, राजा बिना सहाय नहीं॥

जबसे राजा बना बेनु, ठग, चोर, लुटेरे रहे नहीं,
तबसे दस्यु-प्रबल-दावामें प्रजा-पखेरू दहे नहीं।
था अभिमानी बेनु सहज ही निर्दय तथा निरंकुश भी,
उसने बालपनेसे लेकर सुख न किसीको दिया कभी॥

सज्जन पुरुषोंका वह पापी अति अपमान लगा करने,
महामान्य नेताओंसे वह अपनी जेल लगा भरने।
यद्यपि चोर ठगोंसे उसने रक्षित रैयत की सारी,
चोर, ठगोंकी "प्रजा-रक्षिणी" सेना प्रस्तुत की भारी॥

वही दस्यु, ठग, महा लुटेरे बने सिपाही फिरते हैं,
दुखी लोग सब दिन-दिन नाना विपदाओंसे घिरते हैं।
अब तो उनका काम रह गया प्रजा लूट करके खाना,
नाना जाल बिछाते फिरते, करते अपना मनमाना॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोहा

वेतन मिलता राज्यसे, करमें राज्य-कुदण्ड।
मन-चाहा करने लगे, न्याय बहाने दण्ड॥

प्रजा-धर्मके भावोंपर भी कठिन कुठार लगा चलने,
घोर कुकर्मोंका वसुधापर विषमय-दीप लगा जलने।
न्यायाधीश सु-पदपर पापी पुरुष बिठाये गये महा,
रहा न्यायका नाम नहीं बस अन्धकार मच गया रहा!!

दीन-जनोंका रोदन कोई सुननेवाला रहा नहीं,
ऋषियोंसे यह दुःख प्रजाका गया एक सँग सहा नहीं।
पर-उपकार निरत मुनिगणने हो एकत्र विचार किया,
अहो! बेनुने सरल प्रजाको कितना कितना कष्ट दिया॥

यज्ञ-हवन सब बन्द कर दिये वेद-विरोधी हुआ महा,
दीन-अनाथोंकी अब सुननेवाला कोई नहीं रहा।
प्रजा सब तरह लुटी जा रही, रोना भी अपराध हुआ,
प्रजा-पखेरूगणको देखो, साधक ही दुर्व्याध हुआ॥

रक्षक भक्षक बना, खेतको उल्टी बाढ़ लगी खाने,
अभी हुआ है आदि अनयका, प्रजा-रक्तमें कर साने।
हमने इसको राज्य दिलाया, दिया साँपको दूध पिला,
पुष्प विषैला खिला अचानक, मृतक मेदिया दिया जिला॥

दोहा

सबने यह निश्चय किया, चलें बेनुके पास।
समझावें पहले उसे, यदि मानें न, विनाश॥
जिस राजाके राज्यमें, मिले प्रजाको कष्ट।
उस शासनका शीघ्र ही, होना श्रेष्ठ विनष्ट॥

क्रोध छिपाये ऋषिगण अपना, बेनु भूपके पास गये,
गये भूपको समझाने या लेकर उसका नाश गये।
विनय मधुरता-सनी गिरासे ऋषियोंने उस काल वहां,
समझाया भूपाल बहुत, पर गलती किसकी दाल वहां?

ऋषिगण कहने लगे "भूपते! यों न धर्मका नास करो,
सुख-युत रहो, प्रजाको सुख दो, वैदिक-धर्म प्रकाश करो।
यज्ञ, हवन, दानादि दक्षिणा प्रजाजनोंको करने दो,
भरने दो भण्डार धर्मके, उभरे उसे उभरने दो॥

जिससे जनताका दिल दूखे, ऐसे तज दो काम सभी,
प्रजा दुखी हो जिसकी वह नृप पा सकता आराम कभी?
है हितैषिणी प्रजा तुम्हारी, पद-अधिकारी क्रूर महा,
देते नाना कष्ट प्रजाको, नृपका यही कसूर महा॥

नृपके ही संकेतमात्रसे अधिकारी सब कुछ करते,
लूट लूटकर धन रैयतका सब अपना घर हैं भरते।
जनताके उपदेशक नेता, उन्नत चेता जो नर हैं,
पड़े कैदमें वही सड़ रहे, सहते कड़ा निरादर हैं॥

दोहा

इससे बढ़कर और क्या, होगा अत्याचार?
'आह' मात्र उनकी करे, सकुल विभव संहार॥"

ऋषियोंका कुछ क्रोध देखकर, क्रोधित बेनु हुआ भारी,
मानों उसने निज विनाशकी करनी चाही तैयारी।
"मूर्ख कहींके फिरते देखो, मुझे अधर्मी कहते हैं,
'धर्म' 'धर्म' की धूम मचा कर व्यर्थ कलेजा दहते हैं॥

धर्म कौनसा है वह जिसको मैंने समझ नहीं रक्खा,
ऐसा कौन पदार्थ विश्वका जिसको मैंने नहिं चक्खा।
जो मैं कर दूं धर्म वही है, जो मैं कह दूं नीति वही,
जिधर चलूं मैं, पन्थ वही है, जो मैं करदूं रीति वही॥

मुझ राजा बिन ईश्वर कौन, कहां रहता है दिखलाओ?
निरे जङ्गली तुम क्या जानो, मुझे कुछ नहीं सिखलाओ।"
मची खलबली ऋषि-मण्डलमें, उघड़ी दबकी आग कड़ी,
नास्तिकता यों लखकर नृपकी, मृत्यु पास आ हुई खड़ी॥

ऋषिगण बोले, "दुष्ट भूप यह राज्यासनके योग्य नहीं,
त्रासक, धर्म-विनाशक शासक यह शासनके योग्य नहीं।
कर डालो हाँ, भस्म दुष्टको, सिंहासनपर राख मिले,
शान्ति रहे ज्यों राज्य-विपिनमें, जनता-तरु पत्ता न हिले॥

दोहा

ऋषियोंने की एक सँग क्रोध भरी "हुंकार"।
तनकी भस्मी कर गयी, शाप-सर्प-फुंकार॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अद्वेषता—निर्दोषसे द्वेष न करना अद्वेषताके गुणका सूचक नहीं है। दोषीसे भी जो द्वेष नहीं करता, वही अद्वेषताके गुणकी शोभा बढ़ाता है।

अनुयायी—जो धर्मके लिये, देशके लिये, सत्यके लिये मरनेको तैयार न हो, जो अपनी तुच्छता समझकर नम्रतापूर्वक बर्ताव नहीं करता वह मेरा 'अनुयायी' नहीं है।

अबला—अबला विशेषण आत्माको लागू नहीं पड़ सकता। इसका प्रयोग तो शरीरके लिये होना चाहिये। जिस स्त्रीजातिने हनुमान् आदि महावीरों-को जन्म दिया है उस स्त्रीको अबला कहना अज्ञान प्रकट करना है।

अमरता—अमरता तो मरनेमें ही है।

अशान्ति—अशान्तिके बिना शान्ति नहीं मिलती, लेकिन अशान्ति हमारी अपनी हो। हमारे मनका जब खूब मन्थन हो जायगा, जब हम दुःखकी अग्निमें खूब तप जायंगे, तभी हम सच्ची शान्ति पा सकेंगे।

अस्पृश्य—यदि किसीको अस्पृश्य कहा जा सकता है तो केवल उन्हींको जो असत्य और पाखण्डरूपी मैलसे भरे हों।

अहिंसा—अहिंसाका—शान्तिका अर्थ नामर्दी नहीं है, उसका शुद्ध अर्थ मर्दानापन है।

अगुआ—अगुआ वह है जो अधिक सेवा करे।

आत्मराज्य—इस दुनियामें बुद्धिका नहीं किन्तु आत्माका राज्य होगा। आत्माका राज्य अर्थात् सदाचारका राज्य होगा।

आदर्श—आदर्शका पूरा पूरा आचरण होनेसे वह आदर्श नहीं रह जाता। आदर्श (भूमितिकी) सरल रेखा, आदर्श (भूमितिके) समकोण कल्पनामें ही रहनेवाली वस्तु है।

आधुनिक सुधार—आधुनिक सुधार क्या चीज है? अर्थात् पार्थिव पूजा, पशु-पूजा।

आध्यात्मिक ब्रह्मचर्य—हमने ब्रह्मचर्यकी व्याख्याको निरा स्थूलस्वरूप देकर उन लोगोंको दोषी मानना छोड़ दिया है जो पल-पलपर क्रोध किया करते हैं। जिस तरह स्थूल ब्रह्मचर्यका पालन सुखके लिये आवश्यक है उसी तरह आध्यात्मिक ब्रह्मचर्य (अक्रोध) की भी आवश्यकता है।

आस्तिकता—आशावाद आस्तिकता है।

ईश्वर-दर्शन—मैं नितान्त गरीब भारतीयके साथ अपने जीवनको मिलाना चाहता हूं। इसके बिना मुझे तो ईश्वरके दर्शन और किसी तरह कदापि नहीं हो सकते।

ईश्वरकी पहचान—सारी दुनियाके साथ प्यार करना सीखना ही ईश्वरको पहचानना है।

उत्तम प्रचार—उत्तम प्रचार पुस्तकोंका प्रचार नहीं है। लेकिन जिस आचारको हम दूसरोंसे पलवाना उचित समझते हैं, उसका सूक्ष्मतः हम स्वयं पालन करें, यह उत्तमसे उत्तम प्रचार है।

ऊंच-नीच—अकेला ईश्वर ऊंचा है, हम सब नीचे हैं। ईश्वरके दरबारमें दर्जे होंगे तो वे कर्मानुसार होंगे। अधिक सेवा करनेवाले ऊंचे और कम सेवा करनेवाले नीचे रहेंगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक-प्रजा बनना—एक प्रजा बननेके माने तो है तीस करोड़का एक कुटुम्ब बन जाना। एक भी भारतवासी भूखों मरता है तो हम सब भूखों मरते हैं, यह समझना और वैसा बर्ताव करना उसका नाम एक-प्रजा बनना है।

ऐक्य—ऐक्यका मतलब एकमत नहीं है। जितने मुहँ उतनी बात—जितने सिर उतने विचार होते हुए भी ऐक्य हो सकता है।

ऐकान्तिक सत्य—ऐकान्तिक सत्य तो मौनमें ही है।

एम. ए.—मैं तो उसीको सच्चा एम. ए. कहूंगा जिसने मनुष्यका डर छोड़कर ईश्वरसे डरना सीखा हो।

कर्त्तव्य—वैर लेना, या करना मनुष्यका कर्त्तव्य नहीं है, उसका कर्त्तव्य तो क्षमा है।

करुणाकी मूर्त्ति—भारतके करोड़ों नरकंकाल करुणाकी मूर्त्तियां हैं।

कल्पद्रुम—बुद्धिमान्‌की बुद्धि थोड़ा भी शारीरिक परिश्रम करनेसे अधिक तेजस्वी बनती है और यदि वह काम लोकोपयोगी हो तो वह पुनीत भी होती है। ऐसे शारीरिक कामोंमें चर्खा एक सुन्दर हलका और मधुर काम होनेके कारण उत्तम है और भारतवर्षकी वर्तमान दशामें तो वह कल्पद्रुमके समान है।

कला—तपस्या जीवनमें बड़ीसे बड़ी कला है।

कलाकार—जिसने उत्तम जीना जाना, वही सच्चा कलाकार है।

कलाका भण्डार—मेरे लिये तो जगत्कर्त्ताके रचे हुए नभोमण्डलमें कलाके अनन्त भण्डार भरे पड़े हैं। उसे देखते हुए मेरी आंखें कभी थकती नहीं। हर बार कुछ न कुछ नया ही देखनेको मिलता रहता है। ईश्वरकी इस श्रेष्ठ कलाकृतिके सामने मनुष्यकृत तुच्छ कला किस गिनतीमें है?

कलाका विकास—जिस अंश तक एक प्रजा दूसरी प्रजाको मारती है उस अंश तक कलाका विकास नहीं होता, बल्कि पाखण्डका विकास होता है। जिस अंश तक एक प्रजा दुःख सहन करती है—मरती है—उसी अंश तक कलाका विकास होता है।

खादी—खादीसे मतलब है हाथ-कते सूतका हाथसे बुना हुआ कपड़ा।

खूबसूरती—पुराने ज़मानेकी स्त्रियां गुणोंको ही खूबसूरती मानती थीं। कपड़े पहनकर सुन्दर दिखनेका डौल करना वेश्याका अभिनय करना है।

खोटा सिक्का—जो सच बोलना नहीं जानता वह तो खोटा सिक्का है। उसकी कीमत ही नहीं।

गाली खाना—गाली खानेके माने हैं गाली देनेवालेकी इच्छाके वश न होना। यह नहीं कि जैसा गाली देनेवाला कहे वैसा करना।

गुरु—गुरु वह है जो तारे। जो खुद नहीं जानता, वह दूसरोंको क्या तारेगा?

चक्रवर्त्ती—जो पुरुष पवित्र होकर जगत्‌के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है वह चक्रवर्त्तीसे भी अधिक सत्ता भोगता है।

चोर—जो बलिदान नहीं करता, उसे मनुष्य नहीं कहा जा सकता। स्वार्थके लिये जीनेवालोंको शास्त्रोंने चोर कहा है।

जितेन्द्रिय—जो आदमी जबानसे झूठ नहीं बोलता, गन्दा खाना नहीं खाता, बुरा देखता नहीं, जिसकी नज़र साफ है, जिस आदमीकी निगाहमें अपनी स्त्रीको छोड़कर और सब स्त्रियाँ मां बहनके समान हैं, जिसका अपना मन मुट्ठीमें है वह जितेन्द्रिय है।

जोश—जोश आनेका मतलब है हममें भाव (शक्ति) का पैदा होना।

ड्योढ़ा असत्य—अर्ध सत्यको मैं ड्योढ़ा असत्य कहता हूं क्योंकि वह दोनोंको भुलावेमें डालता है।

तपश्चर्या—आत्मप्रहार भी एक तरहकी तपस्या है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तलवार—जीभ भी तलवार है, हाथ भी तलवार है और लोहेकी धारवाला टुकड़ा भी तलवार है। तलवार पशुबल है।

तलवारका बल—आत्मबलके सामने तलवारका बल तिनकेके समान है। अहिंसा आत्मबल है। तलवार शरीरका बल है। तलवारका उपयोग करके आत्मा शरीरवत् बनती है। अहिंसाका उपयोग करके आत्मा आत्मवत् बनती है।

त्रिकालदर्शी—जो सत्यको जानता है—मनसे, वचनसे, कायासे सत्यका ही आचरण करता है वह परमेश्वरको पहचानता है इससे वह त्रिकालदर्शी बनता है।

दयाधर्म—भूखोंका पेट भरने और नंगोंका बदन ढकनेके लिये ही अगर हम खायें पहनें तो उसमें दया-धर्म आ ही जाता है।

दयाधर्मकी परिसीमा—दयाधर्मकी परिसीमा खटमलोंको न मारनेमें ही नहीं है। खटमलोंको न मारना ठीक है लेकिन खटमल पैदा भी नहीं किये जाने चाहिये। जितनी निर्दयता मारनेमें है उससे ज्यादा निर्दयता पैदा करनेमें है।

दिवाली—दिवाली राक्षसी राज्यके अन्त और रामराज्यकी स्थापनाकी सूचक है।

दिव्य शान्ति—यह दिव्य शान्ति जड़ता, मूढ़ता या दुर्बलता नहीं है, यह तो शुद्ध चेतना, ज्ञान और शूरवीरता है।

धर्म—एक सर्वोपरि अदृष्ट शक्तिके बारेमें जीवित अचल श्रद्धा ही मेरे विचारमें धर्म है।

ध्येय—ध्येय कपड़ों जैसी चीज न होनी चाहिये, घड़ीमें पहनी और घड़ीमें उतार डाली। ध्येय उसका नाम है जिसके लिये जातियां पीढ़ियों तक मरती-मिटती रहती हैं।

नाटक—दम्भ नाटक है। नाटकमें बहाये हुए आंसुओंसे कहीं ज्ञान मिलता है?

नैतिक शिक्षा—धर्मका भान होना ही नीतिकी शिक्षा है।

नैतिक रोग—चोरसे बचना जितना जरूरी है उससे ज्यादा जरूरी चोरको उसके धन्धेसे बचाना है। चोरी या लुटेरापन यह भी एक तरहका नैतिक रोग है।

पाठशालाकी व्यवस्था—पाठशालाकी व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये कि बालक भटकते न फिरें और चारित्र्यवान् शिक्षकोंकी देख-रेखमें अपना चारित्र्य निर्माण कर सकें। हिन्दू बालक-बालिका संस्कृत सीखें और गीता पढ़ें, मुसलमान बच्चे अरबी सीखें और कुरान पढ़ें। सब बालक सुन्दर मजबूत कसदार एकसा सूत कातें और फिर धुनें तथा बुनें भी।

परीक्षा—विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंकी परीक्षा उनके ज्ञानसे नहीं वरन् उनके धर्माचरणद्वारा ही होगी।

पातिव्रत—अखण्ड पातिव्रतका तो यही अर्थ हो सकता है कि एकबार जिसे ज्ञान-पूर्वक पति माना और जाना हो उसके अवसानके बाद भी उसीका स्मरण करके सन्तोष कर लेना; यही नहीं बल्कि उस स्मरणमें ही आनन्द मानना।

परमपुरुषार्थ—जो आदमी सत्य, अहिंसादि पांच यमोंमें श्रद्धा रखता है और उन्हें यथाशक्ति पालता है। जो आदमी आत्मा है, परमात्मा है, आत्मा अजर और अमर है यह मानते हुए भी देहाध्याससे संसारमें अनेक योनियोंमें आता जाता रहता है वह मोक्षका अधिकारी है और मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है।

पञ्चयज्ञ—गृहस्थके लिये भारतमें पांच यज्ञ आवश्यक हैं—चूल्हा, चक्की, मूसल, दोघड़ और चरखा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाठ्य पुस्तक—मैं बालकोंके हाथमें पाठ्य पुस्तकें देना नहीं चाहता, शिक्षकोंको स्वयं उन्हें पढ़ना हो तो भले ही पढ़ें। शिक्षकोंके लिये चाहे जितना लिखिये, बालकोंके लिये लिखना शिक्षकोंको मुर्दामशीन बना देना है, शिक्षकोंमें चिन्तना-शक्ति और स्वतन्त्रताका नाश कर देना है।

पाप—एक भी प्राणीको पीड़ा पहुंचाना, शत्रु मानना पाप है। जिस काममें आत्माका पतन है वह पाप है।

पापमुक्ति—आत्मशुद्धिका ही दूसरा नाम पापमुक्ति है।

पारस—प्रेम पारस है।

पींजरापोल—पींजरापोल कुछ निकम्मे पशुओंको रखने और उन्हें आरामसे मरने देनेकी जगह न होनी चाहिये। मैं पींजरापोलमें आदर्श गाय बैल देखनेकी आशा रखता हूं। पींजरापोल शहरोंके बीचमें नहीं बल्कि बड़े खेतोंमें होने चाहियें और उसपर बेशुमार धन खर्च करनेके बदले उसमेंसे बेशुमार धन पैदा होना चाहिये।

पुरुषार्थ—हममें आत्माके सो जानेकी (कर्त्तव्य-विमुखताकी) आदत पड़ गयी है। उसे समय समय-पर जगाना पड़ता है और यही पुरुषार्थ है।

पैसा—मजदूरी ही सच्चा पैसा है।

प्रजाभावना—जो प्रजाभावनाका विकास चाहते हैं तो हमारा धर्म है कि हम गरीबको पहली सुविधा दें।

प्रभुका चोर—जो ईश्वर-प्रार्थना बिना, संध्या-स्नानादिके बिना दिन बिताता है वह प्रभुका चोर बन जाता है।

पढ़ाई—हमारा मनुष्य बनना प्रथम पढ़ाई है।

प्रार्थना—ईश्वरसे सांसारिक सुख या दूसरी स्वार्थसिद्धिकी चीजें माँगना प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना दुःखसे व्याकुल आत्माका गम्भीर नाद है। व्यक्ति या जाति जब किसी महान् पीड़ासे व्याकुल हो उठती है तब उस पीड़ाका शुद्ध ज्ञान ही प्रार्थना है।

प्रेम—जड़ पदार्थोंमें एक दूसरेसे मिलकर रहनेकी जो शक्ति है वही शक्ति चेतन पदार्थमें यानी हममें भी होनी चाहिये। आकर्षण शक्तिका नाम प्रेम है।*

(शेष फिर)

अनुरागकी बातें

सदय ! कृपाकी कोर, अब तो दिखा दो मुझे,
चरचा सुनाओ मत अधिक विरागकी ।
एक बार यों ही बैठे बैठे ले चुके हो मन,
दुःख देतीं लपटें तभीसे विरहागकी ॥
रावणको तारा, गजराजको उबारा, फिर
सोचते हो बात भला मेरे क्यों अभागकी ।
भाग्य तो जगेंगे तभी, प्राणधन ! मुझे जब,
बातें आ सुनाओगे दो चार अनुरागकी ॥

गंगासहाय पाराशरी 'कमल' सम्पादक 'कमल'

* भाई श्रीमहावीरप्रसादजी पोद्दारकी कृपासे प्राप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्मामें ही सुख है
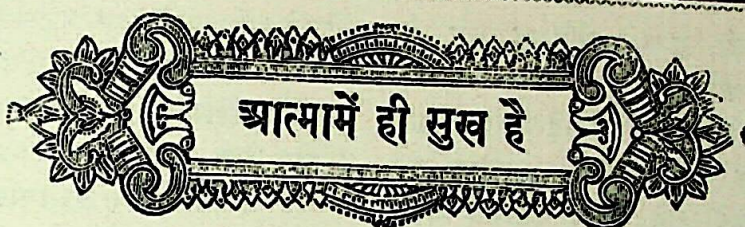
(लेखिका–बहिन जयदेवीजी)

हा! संसार क्या ही अनोखा वट-वृक्ष है, जिसके फल, फूल, पत्ते और टहनियां देख-देखकर मनुष्य मोहित हो रहा है। इसके विविध प्रकारके रूप-रंगपर आसक्त रहनेके कारण वह अपने असली स्वरूपको भूलकर दुःख पा रहा है और इधर उधर भटकता हुआ जन्म-मरणके गर्तमें गिर रहा है। यदि वह अपनी आंखें खोलकर एकबार अपने स्वरूपको देख ले, तो इस जन्म-मरणके गर्तसे बचकर अपने कल्याणकारी मार्गपर आ सकता है और उसके लिये यह संसार, जो दुःखरूप दिखायी दे रहा है, सुखरूप हो सकता है। सब अपने अपने दुःखोंसे घबराकर जो पुकार मचा रहे हैं, इसका कारण यही है कि इस विश्वको जैसा मान रक्खा है, यह वैसा नहीं है! इसका असली रूप सुख ही है, दुःखका तो इसमें लेशमात्र भी नहीं है। विचारपूर्वक देखा जाय तो सारे विश्वमें केवल अखण्ड सुखकी ज्योति जग-मगा रही है। वास्तवमें विश्वमें ब्रह्म है और ब्रह्ममें विश्व है। ब्रह्ममें न यह संसार है न कोई क्लेश है। यह सब नामरूपात्मक दृश्य तो मायाका पसारा है। उसी माया—प्रकृतिमें सुख-दुःख हुआ करते हैं। एक दूसरेके धर्मोंको अपनेमें मान लेना कितनी बड़ी मूर्खता है? वास्तवमें प्रकृतिसे ही सुख-दुःख बने हैं और उसीमें उनकी स्थिति है। आत्मा तो अनन्त अखण्ड सुखका सागर है। जो इस प्रकार जानता है, वही सब दुःखोंसे मुक्त होता है, उसीका जन्म धन्य है। उसको फिर जन्म-मरणके चक्करमें नहीं घूमना पड़ता। यह चक्कर उन्हींके लिये है जिन्होंने प्रकृतिके धर्मोंको अपना धर्म मान लिया है और जो उसके सुख तथा दुःखोंमें राग-द्वेष रखकर किसीको सुख, किसीको दुःख पहुंचानेका प्रयत्न करते हैं। प्रयत्नमें जब कुछ सफलता होती है तब तो अहङ्कार तीनों गुणों सहित प्रचण्ड होकर कहने लगता है—अब मेरे समान कौन है जो जीवोंको उचित दण्ड देकर सुखी हो। मैं तो यहांका राजा हूं। मुझे अधिकार है। मेरी बराबरी कौन कर सकता है? मैं भोगी हूं, मैं बलवान् हूं। यहां मुझको कौन जीत सकता है। इसप्रकार अनेक मनोरथोंमें फँस, अपनेको जिनसे सुख मिला उनमें राग और जिनसे दुःख मिला उनसे द्वेष भाव रख पापका भागी बनकर कभी उच्च कभी नीच योनियोंमें भटका करता है। वास्तवमें तो यह सुख-दुःख कोई वस्तु नहीं। स्व-कर्मानुसार ये सब प्रकृतिमें होते रहते हैं। जो अवश्य ही होनेवाला है, उसको कौन टाल सकता है? प्रारब्ध कर्मका और कोई प्रतिकार नहीं। फिर व्यर्थ ही मनमें राग-द्वेष रखकर अपने आत्म-सुखसे विमुख होना है।

इस प्रकार अपनी फुफिया-सासके पूर्वलिखित विचार सुनकर एक बाल-दुःखिनी वधूने उससे इसप्रकार प्रश्न किये—

प्रश्न—फुआजी! आप तो कहती हैं कि 'संसारमें दुःख है ही नहीं। दुःख तो प्रकृतिका धर्म है। अपना आत्मा तो सुखस्वरूप है। उसमें नाममात्र भी दुःख नहीं।' यह तो एक असम्भव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सी बात है। भला, दुःख अपनेमें नहीं तो और किसमें है ? सब कैसे सुखी हो सकते हैं ? सुख तो उन्हींके भाग्यमें होगा, जिन्होंने बड़े बड़े पुण्य कार्य अर्थात् सम्पत्तिका दान, यज्ञादिका अनुष्ठान तथा निष्काम कर्म किये होंगे । यह कहावत प्रसिद्ध है कि "जो देगा सो पायगा"। हम जैसी अभागिनियोंने न तो पहले ही यज्ञ, दान और तप किये और न अब ही कर सकती हैं, अब तो बचपनमें ही यह बज्रपात हो गया !

जैसे पक्षी परोंके बिना नहीं उड़ सकता, वैसे ही स्त्री भी पतिके बिना कुछ नहीं कर सकती। अब तो दिन-रात सेवा करके किसी प्रकार अपना निर्वाह करना है ; तिसपर भी कुटुम्बीजन प्रसन्न नहीं रहते। प्रत्येक समय योग्य अयोग्य सब कुछ सहना पड़ता है। अपने मनके अनुकूल तो स्वप्नमें भी कार्य नहीं कर सकती। ईश्वर-भजन तथा वेदादिका स्वाध्याय करना भी अति दुस्तर है। क्षणमात्र भी गृह-कार्योंसे कभी अवकाश नहीं मिलता। हम जैसी अभागिनियोंका न तो यही लोक बनता है और न परलोक ही। वैधव्य-जीवनका सुधार तो ईश्वर-भजन, स्वाध्याय तथा सत्सङ्गसे ही सम्भव है, सो हम इनमेंसे एकका भी पालन नहीं कर सकतीं। घरसे बाहर निकलनेकी आज्ञा नहीं है। क्या बिना सत्सङ्ग किसीने कभी कुछ प्राप्त किया है ? आपको संसारके अन्दर जो सुखाभास होता है उसका एकमात्र कारण सत्संग ही है ; आप नित्यप्रति सत्सङ्गमें जाकर भगवच्चर्चा सुनती हैं, उसीसे दुःखोंकी निवृत्ति कर आज सुखकी महिमा गा रही हैं। सत्सङ्गकी ऐसी ही महिमा है। आप तो पिताके घरपर हैं, इसलिये कहीं आने जानेमें आपको कोई रुकावट नहीं है। दूसरे, भाग्यसे माता-पिता भी विद्वान् हैं अतः वे अच्छी-अच्छी कथाओं तथा सदुपदेशोंके श्रवणार्थ आपको उत्साहित करते रहते हैं। हम अबला तो अभी दूसरोंके सहारे चलनेवाली हैं ; करें भी तो क्या करें ? जिनके अधिकारमें रहना पड़ता है उन्हींके इशारेपर नाचना पड़ता है। और चाहिये भी ऐसा ही। कहावत प्रसिद्ध है—"जस काछिय तस चाहिय नाचा।" अर्थात् जैसा स्वांग बनाया जाय वैसा ही नाच नाचे। जब हमें अपनी स्वतन्त्रता ही न रही तब फिर कहना ही क्या है ? जो तनिक भी आनाकानी करती हैं तो स्त्रियां पीछे पड़ जाती हैं और कहने लगती हैं कि, 'अब इस अभागे शरीरका होगा ही क्या ? इसे कौवे-कुत्ते भी नहीं खायेंगे।' ये वाक्य-वाण हृदयमें बिंध जाते हैं। हाँ, यदि उन अधिकारी जनोंको ईश्वर ऐसी सुबुद्धि दें कि हम जैसी विधवाओंको धर्ममार्गपर आरूढ़ होनेकी आज्ञा मिल जाय तो हम अपना शेष जीवन सार्थक कर सकती हैं। मेरा चित्त तो दिन-रात इसी अग्निमें जला करता है कि मैं धर्मका यथावत् पालन नहीं कर सकती। ईश्वरने अनुग्रहकर थोड़ी सी विद्याका दान मुझे दिया है जिससे विदित होता है कि अपने अपने कर्मानुसार कर्म करना ही श्रेयस्कर है। गृहस्थिनियोंको चाहिये कि अपने पतिकी आज्ञामें तत्पर रहें। और कुटुम्बी जनोंका यथायोग्य सत्कार तथा पालन करें; क्योंकि उनके लिये पति ही ईश्वररूप है। वह जैसी आज्ञा दें उसीके अनुसार बर्ताव करना उनका परम धर्म है। परन्तु पति-वियोगिनी बालाओंका तो परमात्मा ही एकमात्र पति है और उसीकी आज्ञापर चलना धर्मपर चलना है। लेकिन परतन्त्रताके कारण हम अपने धर्मका पालन नहीं कर सकतीं। आयुके इस बड़े भागको चिन्ताओंमें बिताकर जन्म-मरणके गर्तमें गिरी जा रही हैं। अतः मैं कहती हूं कि सब किस प्रकार सुखी हो सकती हैं। जिनके भाग्यमें धन-धान्य, सुख-सम्पत्ति लिखा है वही सुखी देखनेमें आते हैं। वास्तवमें उन्हींका इस पृथ्वीपर जन्म लेना सार्थक है।

समाधान—प्रिय वधू ! तुम किसको सुख और किसको दुःख समझ रही हो। सांसारिक पदार्थोंमें सुख समझना अज्ञानताका फल है। तुम्हारी बात

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुनकर मुझे बड़ा खेद होता है। यदि मनुष्यको आरम्भसे ही धार्मिक शिक्षा दी जाय, तो क्या ऐसे तुच्छ पदार्थोंकी प्राप्ति-अप्राप्तिमें उसे हर्ष-शोक हो सकता है? प्राचीन कालमें बालक-बालिकाओंको आरम्भसे ही धार्मिक शिक्षा दी जाती थी, जिसके फल-स्वरूप वे आजन्म दुःखोंसे मुक्त रहा करते थे। वे इन अनित्य और क्षण-भंगुर पदार्थोंमें आसक्ति नहीं रखते थे। वे समझते थे कि ये सब दृश्य ईश्वरकी माया या सिनेमाका तमाशा है। तमाशेसे किसीको कुछ हानि-लाभ नहीं होता। यह बात भी सबके अनुभवसिद्ध है कि दूसरेके हानि-लाभसे किसीको दुःख-सुख नहीं होता; जिसको अपना मान लिया जाता है उसीमें हर्ष-शोकका अनुभव होता है। ये सुख-दुःख सब मनके माने हुए हैं। वास्तवमें तो यह शरीर भी अपना नहीं है। एक क्षणमात्रमें वह हमसे पृथक् और हम उससे पृथक् हो जाते हैं। जब प्रारब्धभोग पूरे हो जाते हैं तो लाख प्रयत्न करनेपर भी कोई इसमें नहीं रह सकता। तुम प्रत्यक्ष ही देखती हो कि जिसकी जो वस्तु है वह अवश्यमेव उसे लेकर ही रहता है। तब फिर इसमें दुःख मानना कितनी बड़ी मूर्खता है। परन्तु इसप्रकारके विचार एक दो दिनके अभ्याससे मनमें नहीं टिक सकते। चिरकालतक इसके लिये अभ्यास किया जाना चाहिये। मैं तो बार बार यही कहूंगी कि अपने सुख-स्वरूप सर्वव्यापक आत्मामें दुःखका लेशमात्र भी नहीं है। तुम जिसको सुख मान रही हो, यदि दृष्टि पसारकर देखो तो वास्तवमें उनमें भी सुख नहीं है। क्या तुम धनिकोंको सुखी समझती हो? धनवानोंसे जाकर पूछो तो वे अपनेको पूर्ण सुखी नहीं कहेंगे। अनेक प्रकारके कारबार तथा लेन-देनमें हर समय उनकी चित्त-वृत्तियां फँसी ही रहती हैं। जिन आलीशान मकानों, बाग-बगीचों और कला-कुञ्जोंको देखकर मनुष्य प्रसन्न होते हैं और उनके बनानेवालोंके भाग्यकी सराहना करते हैं, क्या वे बिना परिश्रम ही प्राप्त हो गये थे? नहीं, उनको प्राप्त करने तथा सुरक्षित रखनेमें जितनी कठिनाइयां हैं, उनका कटु अनुभव उनके अधिकारियोंको ही है। लोकमें अनेक प्रकारकी विपत्तियां और बुराइयां धनवानोंको भी झेलनी पड़ती हैं। इसलिये सब धनवान सुखी नहीं हैं।

यदि तू यह कहे कि यहांका सुख न सही, परलोकमें तो अवश्य स्वर्ग-सुख मिलेगा, स्वर्ग-सुख तो अति अद्भुत सुननेमें आता है किन्तु उसका भी उत्तर यही है कि यद्यपि स्वर्ग-सुख वास्तवमें अद्भुत है परन्तु वह भी है तो नाशवान् ही। इसमें उपनिषद्‌की श्रुति प्रमाण है कि, 'इष्टापूर्त' अर्थात् यज्ञादि कर्म करनेवाले, कूप-बावड़ी बनानेवाले, इनको ही श्रेष्ठ मानते हुए कल्याणका अन्य कोई साधन नहीं करते। इसप्रकार वे कर्मकाण्डी जबतक पुण्य होता है, तबतक स्वर्गमें वास करते हैं। अन्तमें जब पुण्य क्षीण हो जाते हैं तब वे फिर इस लोकमें आनेको बाध्य होते हैं। क्या यह कम दुःखकी बात है। यह तो वही कहावत हुई कि 'धोबीका कुत्ता, घरका न घाटका।' यदि तू परिवार-वृद्धिको सुख मानती है, तो यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि एक तो ये सभी अनित्य और क्षणभंगुर हैं, दूसरे विचारकर देखा जाय तो इनमें सिवा दुःखके सुखका लेश भी नहीं। जबतक पुत्र नहीं होता तबतक उसकी प्राप्तिकी उत्कट इच्छा रहती है। जब दैवयोगसे पुत्र उत्पन्न हुआ, तो उसके लालन-पालनमें अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। जैसे तैसे आठ नौ वर्षका हुआ कि अब उसके विवाह करनेकी इच्छाओंने जोर पकड़ा। पुत्रसे कहती है—'जाओ बेटा, बाबासे कहो कि मेरा विवाह जल्दी कर दो। देखो न, तुम्हारे साथ खेलनेको एक नन्हीं-सी बहू आवेगी।' इसप्रकार विवाहके संस्कार जम जानेसे लड़केका पढ़ने-लिखनेमें मन नहीं लगता। अन्तमें बड़ी सजधजके साथ जब उसका विवाह हुआ और वधू घरमें आयी, तो पहले तो सासजीका वधूपर बड़ा प्रेम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहा, परन्तु जब सासकी प्रकृतिसे वधूकी प्रकृति भिन्न प्रकारकी दिखायी दी, तो बस, सास-बहूमें हमेशा अनबन रहने लगी। न सास वधूसे प्रसन्न, न वधू साससे प्रसन्न। नित्यप्रति क्लेश रहने लगा। पुत्र भी वधूका आज्ञाकारी बन गया। अब तो सासको जो दुःख होता है वह सहा नहीं जाता। प्रतिदिन चिन्ता शरीरको जलाये डालती है। भला जब अपने उदरसे उत्पन्न हुआ पुत्र ही अपनी प्रकृतिके अनुसार नहीं तब दूसरेकी उदरसे उत्पन्न हुई बहूका तो कहना ही क्या? हा! यह आशा ही है जिसके कारण जीवनभर दुःख उठाये, फिर भी अपनी आशा पूर्ण न हुई। अन्त तक एक न एक आशा बनी ही रहती है। प्राणोंका अन्त हो जाता है परन्तु आशाओंका अन्त नहीं होता। इन आशाओंके कारण ही बार बार जन्म-मरणका सुख-दुःख होता रहता है। जबतक इन सुख-दुःखोंके भोगमें प्रारब्ध प्रधान न समझा जायगा तबतक यह जन्म-मरणका चक्कर कभी छूटनेवाला नहीं है। यह तो सबके अनुभव-सिद्ध है कि सब प्राणी सुखके ही लिये प्रयत्न करते हैं, परन्तु होता वही है जो प्रारब्धमें लिखा रहता है। यह मनकी दुर्बलता है कि जब अपना मनचाहा नहीं होता तब हम ईश्वर तथा प्रारब्धको दोष देते हैं। इसीपर तुम्हें एक दृष्टान्त सुनाती हूं। ध्यान देकर सुनना—

एक राजाका कनिष्ठ पुत्र बहुत उद्दण्ड था। राजाने उसे सन्मार्गपर लानेका बहुत कुछ उद्योग किया परन्तु कुछ भी फल न हुआ। लड़का दिनोंदिन विषयाभिलाषी होता गया। होते होते सब प्रजा भी उसके स्वभावके कारण दुखी रहने लगी। तब राजाने उसे अपने देशसे निकाल दिया। जब इधर-उधर घूमते और दुखी होते बहुत दिन बीत गये तब उसका सौतेला भाई, जो उसकी उद्दण्डताके कारण पहले ही घरसे निकाल दिया गया था, उसी जंगलमें मिला। वह सब हाल जानकर उसको सन्त-समागममें छोड़ आया; परन्तु यह आज्ञा दे आया कि यहांसे और कहीं न जाना। यहां जो कुछ फल-मूल मिले उन्हींको खाकर सन्तोष करना। सन्त जो आज्ञा दें उसे मानना। परन्तु राजकुमारका चञ्चल चित्त वहां कब लगनेवाला था? फलतः वह वहांसे भाग आया और विश्वारण्यकी अद्भुत चमक-दमकपर मोहित हो उसने एक रूपवती कन्यासे विवाह कर लिया। कुछ कालतक उसके सुख-भोगमें मस्त रहा। क्रमशः उसके पांच पुत्र और पांच पुत्रियां हुईं। अब तो उनके लालन-पालनमें सब धन व्यय हो गया। पुत्र भी पिताके स्वभाव जैसे ही उत्पन्न हुए। पिता जो आज्ञा करते उसे वे न मानते। उन्होंने रहा-सहा सब धन भी पितासे छीन लिया। स्त्री भी पुत्रोंकी तरफ हो गयी। अब राजकुमारने देखा कि मेरा तो यह सब अपमान करते हैं, जिस स्त्रीको मैं प्राणोंसे प्यारी मानता था, आज वह भी मुझको भला-बुरा सुना रही है। जिन स्त्री-पुत्रादिको मैं सुखरूप मानता था, हा! शोक! आज वे मेरे लिये भयंकर हो रहे हैं। ये तो सब दुःख रूप हैं। वनमें जाकर हरि-भजन करूं। दृढ़संकल्प होकर वह राजपूत वनमें प्रेम-पूर्वक हरि-भजन तथा तप करने लगा। अन्तमें भगवान् प्रसन्न होकर प्रकट हुए और उससे बोले, पुत्र! 'मनचाहा वर मांग।'

राजपुत्रने गद्गद स्वरमें कहा—हे प्रभो! आज मैं बड़ा भाग्यशाली हूं जो आपके दर्शन हुए। अब आपके आज्ञानुसार मैं मनचाहा वर मांगता हूं। मैं सुखकी खोजमें अनेक प्रयत्न करते-करते थक गया हूं। पर आपकी कृपा बिना सुख प्राप्त नहीं कर सका। अब हे कृपासिन्धो! मुझे इस विश्वारण्यका सर्वोत्तम सुख प्रदान कीजिये। यह सुनकर भगवान्ने कहा—'पुत्र! धन, राज्य, समृद्धि, स्त्री, पुत्र, मान, महत्ता, विद्या, बल इत्यादिमेंसे जो अच्छा लगे, माँग ले। परन्तु तू जो सर्वोत्तम सुख माँगता है वह तुझे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किस प्रकार दूं ? वैसा निराला सुख तो यहां संसारके बनानेवालेने पैदा ही नहीं किया। तू जो सुख माँगता है वह तो इस संसारमें है ही नहीं। जो कुछ सुख माना जाता है, वही मैंने तुझसे कहा है। अब तू जो सुख मांगे वही दूं।' यह सुन राजपुत्र बोला–'भगवन्! जो सर्वोत्तम सुख है वही मुझे दीजिये।' भगवान्ने कहा–'पुत्र! इन्द्रियोंसे भोगे जानेवाले यह विषय-सुख सबके लिये बराबर ही है अर्थात् अनुभव करनेवालेको समान ही आनन्द देते हैं। जो सुख राजाको रानीमें है वही सुख शूकरको शूकरीमें है। देखनेवालेको मोहसे राजाका सुख उत्कृष्ट और शूकरका सुख निकृष्ट लगता है। अब तुझको जिसका जो सुख अच्छा लगे, मांग ले।' राजपुत्रने कहा—'भगवन्! मैं नहीं जानता कि ऐसे उत्तम सुखका भोक्ता कौन होगा? आपकी आज्ञा हो तो, मैं एक बार सबमें सुख देख आऊँ और तब उसी जीवके सुख जैसा सुख मांगू।' भगवान् बोले—'जा, जब फिर मुझे याद करेगा तब मैं तुम्हें वर दूंगा।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। राजपुत्र सुखकी खोज करने चल दिया। सर्वप्रथम, वह ऋषि-मुनियोंके पास पहुंचा। वहां देखा कि वे तो दिन-रात जप, तप, वेदाध्ययन और यज्ञादिमें ही लगे रहते हैं। उनके बच्चे तथा स्त्रियाँ भी इसी कर्ममें संलग्न हैं। न खाते हैं, न सोते हैं। दिन-रात ईश्वर-भजनमें ही लगे रहते हैं। यहां इसलोकमें तो उनमें कोई सुख नज़र नहीं आता। हां, परलोक-सुखकी आशासे वे ऐसा करते होंगे। परलोक किसने देखा है? इससे तो हमारे राजमहलमें विशेष सुख है। वहां अनेक दास-दासी, हाथी-घोड़े हैं। परन्तु यह सब सुख तो मुझे प्राप्त हो चुके हैं, क्योंकि मैं भी तो राजा ही था न? ऐसे सुखकी मैं फिर क्या इच्छा करूं? यह तो सुखका आभासमात्र है। राजपुत्र फिर सुखकी खोज करने लगा। चलते चलते एक बड़े समृद्धिशाली शहरमें जा पहुंचा। वहांके सभी प्राणी सुखोंसे भरपूर थे। पृथ्वीके सौन्दर्यका वहां पारावार नहीं था। बस, समझ लिया कि यहीं सर्वोत्तम सुख है। उनके अन्दर प्रवेश करके देखा तो वहांका जो राजा था, वह सोनेकी अमारीपर हीरे-मोतियोंसे जगमगा रहा था। पूछनेसे मालूम हुआ कि इनके बराबर संसारमें दूसरा कोई सुखी नहीं है। परन्तु दो दिन बाद उसी राजाको कवच पहने हुए ससैन्य लड़ाईमें शीघ्रतासे जाते देखा। सबके चेहरेपर उदासी छा रही थी। सोचा, अरे! यहां भी तो बड़ा दुःख है। इस राजाको तो दिन-रात शत्रुओंका भय लगा रहता है। इसी प्रकार अनेक सेठ साहूकार देखे, परन्तु सर्वोत्तम सुख किसीमें भी न देखा। इतनेमें एक स्त्रियोंका झुण्ड दिखायी दिया। विविध प्रकारके अलङ्कारोंसे सजी हुई स्त्रियोंको देखकर विचारने लगा कि–'यहां अवश्य ही सर्वोत्तम सुख होगा, क्योंकि इन्हें किसी बातकी चिन्ता नहीं है। इनके पति कमाकर लाते हैं और ये घरोंमें बैठी-बैठी अच्छेसे अच्छे मनचाहे भोग भोगती हैं। परन्तु जब उनके भी अन्तस्तलमें प्रवेश करके देखा तो उनसा दुखी किसीको न पाया। किसीको पुत्र न होनेका दुःख, किसीको बच्चे होकर मर जानेका दुःख, किसीको पतिका डर, किसीको सासका डर। तात्पर्य यह कि किसीको भी दुःखसे खाली न देखा। फिर बच्चोंकी तरफ ध्यान किया कि इनको तो अभी कोई दुःख नहीं है। बस, इनमें ही सुख होगा। परन्तु उनको भी दुःखोंसे खाली नहीं पाया। किसीको माता-पिताका भय, किसीको पाठ याद न होनेका डर तो किसीको मनचाही वस्तु न मिलनेकी चिन्ता,—इत्यादि इत्यादि, अनेक प्रकारके दुःख उनके अन्दर देखे। तब निराश होकर ईश्वरकी शरण ग्रहणकर कल्याण-पथ-गामी हुआ।

प्रिय पुत्रि! जैसे लड़कियां आटा छाननेके बाद बची हुई बूरके लड्डू बना लेती हैं, वे देखनेमें अति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुन्दर लगते हैं परन्तु उनमें स्वाद नहीं होता। कहा भी हैः—

जैसे लड्डू बूरके, विषय आगमापाय।
खावे सो पछताय है, नहीं खाय पछताय॥
नहीं खाय पछताय देखकर जी ललचावे।
खाय स्वाद नहिं आय, थूकते ही बन आवे॥
जयदेवी तत्त्वज्ञ तजे विष विषयन ऐसे।
डरते हैं सब लोग सर्प कालेसे जैसे॥

अब तू समझकर देख, कि यह विषयसुख बूरके लड्डूके समान है। जो खाय सो पछताय, और न खाय सो पछताय। तेरे पास यह विषय-सुख नहीं है तो तू यों पछताती है और दुःख मानती है तथा जिनको ये बड़े पुण्यके कारण मिले हुए हैं वे भी पूर्व कथनानुसार पछताते तथा दुःख मानते हैं। सुख कहीं बाहर किसी वस्तुके अन्दर नहीं समाया हुआ है। वह तो अपने अन्दर ही छिपा हुआ है। कोई भी विषय सुख तथा दुःख देनेवाले नहीं हैं। यह तो मैं पहले ही कह चुकी हूं कि संसारमें दुःखका लेश-मात्र भी नहीं है। सब संसार सुखस्वरूप है। क्योंकि आधारसे आधेय भिन्न नहीं है। जब सबका आधार सुखस्वरूप है तो आधेय भी सुखस्वरूप ही होना चाहिये। इस संसारमें आसक्त होना और ईश्वरकी वस्तुओंको अपना समझना ही दुःख है। यह सुख-दुःख सब मनके माने हुए हैं। यह तो वही कहावत हुई कि—"गधा मरे कुम्हारका, धोबिन सती होय।"

अपना आत्मा तो अखण्ड सुखस्वरूप है। तू उसीमें मनको लगाकर दिनरात उसीका ध्यान किया कर। यह क्रिया तो मनसे हुआ करती है। इन कर्मेन्द्रियोंसे अन्य शुभ कर्म किया कर। अपने सास-ससुर, कुटुम्बी-जनोंकी प्रेम और श्रद्धासे सेवा किया कर। यम-नियमोंका यथावत् पालन कर। ऐसा करनेसे जब तेरा अन्तःकरण शुद्ध होगा, तब आप ही तुझे ज्ञानकी प्राप्ति हो जायगी और उसको जाननेके लिये जब तेरी तीव्र इच्छा होगी, तब ईश्वर आप ही तेरे लिये ज्ञानका मार्ग बता देंगे। परन्तु ईश-कृपा भी तभी होगी जब तेरी उत्कट इच्छा उनकी तरफ जानेकी होगी। अपनी तीव्र इच्छा बिना, गुरु अथवा ईश्वर कोई भी कुछ नहीं कर सकता। इसपर एक दृष्टान्त हैः—

एक शिष्य गुरुकी आज्ञा न मानकर भिक्षाके लिये गया। वहां किसी स्त्रीके जालमें फँस गया। गुरुने योगविद्यासे जान लिया कि शिष्य बन्धनमें आ गया। निदान वे शिष्यकी खोजमें निकले। वह एक मकानके अन्दर स्त्रीके मोहमें मस्त था। गुरुने कहा—'शिष्य! चल।' शिष्यने उत्तर दिया—'मैं परवश हूं। चल नहीं सकता।' इसी तरह कई बार गुरु गये पर शिष्य नहीं आया। अन्तमें जब शिष्य बहुत दुखी हुआ तो गुरुका स्मरण किया। गुरु उपस्थित हुए और बोले—'बच्चा क्या है?' शिष्यने कहा—'महाराज! दयाकर इस दुःखसे छुड़ाइये।' गुरुने कहा—'मैं तेरी तीव्र इच्छा बिना कुछ भी नहीं कर सकता।' इस संवादसे यह सिद्ध हो जाता है कि अपनी तीव्र इच्छा बिना मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता।

मैं भी बाल्यावस्थामें तेरे ही समान भाग्य-हीना थी, परन्तु माता पिता और गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन करती थी। प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा-शुश्रूषा किया करती थी। कभी भी अपने भाग्यको दोष नहीं देती थी। यथाप्राप्तमें सन्तुष्ट रहा करती थी। तुझे जो यह शंका है कि तुम तो पिताके घर रहती हो सो पुत्री! ईश्वर जो करता है अच्छा ही करता है। न मालूम, तेरे ही कारण मुझे वह यहां रखता हो। तुझे जो शङ्का हुआ करे वह मुझसे पूछ लिया कर। पति-कुलमें रहना तो स्त्रीका धर्म है। इसमें तू दुःख क्यों मानती है। प्रसन्नतासे अपने वैधव्य-व्रतका पालन कर। भगवान् तेरा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मङ्गल करे, यही मेरी प्रार्थना है। ऊपर बताये हुए यम-नियम इस प्रकार हैं। मनसे किसीकी बुराई मत चाह। वाणीसे किसीको दोष मत दे। शरीरसे किसीको कष्ट मत पहुंचा। सच्ची हितकारिणी वाणी बोलकर सब पदार्थ ईश्वरके समझ। ब्रह्मचर्यका पालन कर। स्वप्नमें भी कभी पर-पुरुषका ध्यान न कर। आवश्यक पदार्थोंके सिवा अन्य कुछ पास न रख। स्नानादिसे शरीरको शुद्ध रख। राग-द्वेष, ईर्ष्या आदिसे रहित होकर मनको शुद्ध रख। जो कुछ मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रह। हित-मित भोजन किया कर। ईश्वर-नाम जपा कर। सच्छास्त्रोंका अध्ययन और चिन्तन कर। ईश्वरसे प्रार्थना किया कर कि हे स्वामी! मेरी बुद्धिको निर्मल बना दो। हे बेटी! मनको सदा प्रसन्न रखा कर। मन चङ्गा तो कठौतीमें गङ्गा। तुझे बाहर जानेकी क्या जरूरत है। मैं तो हर समय तेरे पास हूं। तू कभी अशान्त मत हो। यदि मेरे द्वारा तेरे मनको कुछ भी शान्ति मिलेगी तो मैं अपना जन्म धन्य तथा सफल समझूंगी। यद्यपि ईश्वर सर्वत्र है तो भी ईश्वरकी प्राप्ति शरीरमें होती है। प्रेमपूर्वक भगवन्नाम जपनेसे ईश्वर प्रकट हो जाते हैं। कहा भी है:—

कुं०:—जैसे मीठी एक सी, बाहर भीतर खाँड।
भगवत् त्योंही एकरस, पूर्ण पिण्ड ब्रह्माण्ड॥

पूर्ण पिण्ड ब्रह्माण्ड, सर्वगत सर्वप्रकाशी।
अद्वितीय निर्द्वन्द्व नित्य, सच्चित सुखराशी॥
'जयदेवी' ले काढ़, पिण्डसे भगवत् ऐसे।
गन्नेसे ज्यों सार, दूधसे मक्खन जैसे॥

अभिलाषा

(ले०—पं० गौरीशङ्करजी द्विवेदी 'शङ्कर' कालपी)

है विकसित यह पुष्प आपका,
सत्वर इसे तोड़ कर नाथ!
निर्विलम्ब ले आप लीजिये,
करुणाकर! अपने ही हाथ॥

भय है, कहीं अन्यथा यह फिर,
यहीं न प्रभु! मुरझा जाये।
अथवा गिर कर मिलै धूलिमें,
सार न जीवनका पाये॥

प्रभुकी मालामें चाहे यह,
पा न सकै प्रभुवर! स्थान।
कर-कमलोंसे तोड़ कीजिये,
इसे कृतार्थ आप धीमान!

रंग नहीं गहरा है इसका,
नहीं दीजिये इस पर ध्यान।
जगमें सबको अपनाते हैं
समतासे ही साधु सुजान॥

फिर भी ये तो वस्तु आपकी,
कर विचार ऐसा मतिमान!
जीवन सफल बनाकर, इसको—
सुखी कीजिये अब भगवान!

× × × ×

एक आपका आश्रय स्वामी,
और न हृदय विवेक।
'शङ्कर'नाथ! कीजिये पूरण,
यह अभिलाषा एक॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परम आश्चर्य

(लेखक-श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी)

महाभारतकी कथा है, यक्षके प्रश्न 'आश्चर्य क्या है' के उत्तरमें धर्मराज युधिष्ठिरने कहा था कि, 'प्रतिदिन लोग मरकर यम-सदन जा रहे हैं, यह देखते हुए भी बचे हुए लोग ऐसी बुद्धिसे व्यवहार करते हैं मानो वे कभी नहीं मरेंगे' यही आश्चर्य है। परन्तु देखा जाता है कि जगत्में इससे भी अधिक आश्चर्य एक और है। इस विश्व-ब्रह्माण्डमें जो सबसे परमोत्तम, परम उत्कृष्ट परम श्रेयस्कर और परम कल्याण तथा शान्तिप्रद है, एवं जिसकी प्राप्तिके लिये शारीरिक कष्ट-सहन, द्रव्यादि-व्यय और किसी भी आवश्यक इष्ट-पदार्थके त्याग आदि कठिन कर्मोंकी कोई आवश्यकता नहीं, उस परम वस्तुके लाभके लिये कोई विरला ही पुरुष समुचित प्रयत्न करता है।

किसी एक व्यावहारिक विद्याकी प्राप्तिके लिये प्रचुर द्रव्यका व्यय, शारीरिक कष्ट, बहुदूर यात्रा, यथेष्ट त्याग और बुद्धिकी तीक्ष्णता आदिकी आवश्यकता है और इन समस्त साधनोंके सम्पन्न करनेपर भी बहुतसे लोगोंको उक्त विद्याकी यथार्थ प्राप्ति नहीं होती। धन-ऐश्वर्यके उपार्जनके लिये भी विद्या, बल, मूलधन, शारीरिक परिश्रम और बुद्धि-प्रयोग आदिकी आवश्यकता होती है एवं इनका प्रयोग करनेपर भी कई जगह प्रायः सफलता नहीं मिलती और सफलता मिलनेपर भी प्राप्त धन प्रायः नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार सन्तति आदिकी प्राप्ति भी कठिनतासे होती है और होनेपर वियोग भी हो जाता है। जिसके पास द्रव्य, बल, विद्या और स्वास्थ्यादि आवश्यक साधनोंका अभाव होता है, उसको सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्ति प्रायः नहीं हुआ करती। ये सांसारिक पदार्थ नश्वर क्षणभङ्गुर तथा परिणाममें प्रायः दुःखप्रद हैं। इतना होनेपर भी सब लोगोंको इनकी प्राप्ति नहीं हो सकती, तथापि मनुष्य इन्हीं नश्वर, यथार्थ सुखहीन और परिणाममें प्रायः दुःखद पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये ही व्यग्र और व्यस्त रहते हैं, परन्तु उस इष्ट पदार्थकी प्राप्तिके लिये,—जिसके प्राप्त होनेपर समस्त दुःख दूर हो जाते हैं; सदा स्थायी रहनेवाली, वियोगकी सम्भावनासे शून्य परम शान्तिकी प्राप्ति होती है तथा जिसके प्राप्त करनेमें कोई भी अनिवार्य अड़चन नहीं आती एवं न किसी ऐसी सामग्री या साधनाकी ही आवश्यकता होती है जो सबको प्राप्त या सुसाध्य न हो,—लोग जान-बूझकर भी यत्न नहीं करते, इससे अधिक आश्चर्य क्या होगा ?

इस परम इष्ट ईश्वरकी प्राप्ति हो जानेपर असत्यके बदले सत्य, मरणके बदले अमरत्व, जड़की जगह चैतन्य, दुःखके स्थानमें परम सुख, उद्वेगके बदले परम शान्ति, अज्ञानके बदले परम ज्ञान और निर्बलताके बदले अनन्त शक्ति आदि मिल जाती हैं। इस परम आराध्य परमात्माकी प्राप्तिमें द्रव्यकी भी कोई आवश्यकता नहीं, बल्कि धनीकी अपेक्षा निर्धनको सुगमतासे प्राप्ति होती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। श्रीमद्भागवतमें श्रीभगवान्‌का वाक्य है कि 'मैं अपने भक्तको दरिद्र बना देता हूं जिससे उसे मेरी प्राप्तिमें बाधा देनेवाली कोई आसक्ति नहीं रह जाती।' दीनोंको दान देना उत्तम है, दानसे चित्तकी शुद्धि और स्वर्ग-सुखकी प्राप्ति होती है, किन्तु ईश्वरकी साक्षात् प्राप्ति दानद्वारा नहीं हो सकती। शास्त्र-ज्ञानकी प्राप्तिके लिये उचित परिश्रम और बुद्धिकी विलक्षणता आदि आवश्यक हैं, परन्तु ईश्वर-प्राप्ति तो इनके बिना भी हो सकती है। सिद्धि प्राप्त करा देनेवाली तपस्या और यज्ञ भी बिना कष्ट और त्यागके सम्पन्न नहीं होते, किन्तु ईश्वर-प्राप्तिके लिये इनकी आवश्यकता नहीं। योग परम कठिन है और सबके लिये सुसाध्य नहीं है, परन्तु भगवत्प्राप्ति बिना योग-साधनाके हो जाती है। कहा है—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥
(गीता ११-५३)

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव!
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥
(श्रीमद्भाग० ११।१४)

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन
(मुण्डक०)

श्रीभगवान् कहते हैं कि, 'हे अर्जुन! मेरा यह रूप न स्वाध्यायसे, न तपस्यासे, न दानसे और न यज्ञसे ही देखा जा सकता है जैसा कि तुमने देखा है। हे उद्धव! मैं (भगवान्) न तो योगसे, न सांख्यज्ञानसे, न वेद-विहित क्रियाओंसे, न वेदपाठसे, न तपसे और न त्यागसे वैसा सहजमें मिलता हूं, जैसा कि अपनी दृढ़ भक्तिसे। 'यह परमात्माकी प्राप्ति न शास्त्र-ज्ञानसे होती है, न बुद्धिसे होती है और न अधिक श्रवणसे ही।' यही परमेश्वरकी परम दयालुता और कारुणिकताका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि अपनी प्राप्तिको उन्होंने सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्तिसे भी अधिक सुगम कर दिया है। इसीलिये ईश्वर-प्राप्तिमें द्रव्य, सम्पत्ति, बल, शास्त्र-ज्ञान, बुद्धि, तप, यज्ञ, योग और शारीरिक कष्ट आदि किसीकी भी कुछ आवश्यकता नहीं। ईश्वर-प्राप्ति तो केवल अनन्यभक्तिसे ही होती है। भगवान् कहते हैं—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।

'हे अर्जुन! केवल अनन्यभक्तिसे मेरा ऐसा रूप देख सकते हो।' भक्ति प्रेमपूर्वक भजन और स्मरणको कहते हैं जिसके लिये केवल मन-बुद्धिका अर्पण अपेक्षित है, अन्य किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं। कहा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
(गीता ९।३०)

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥
(गीता ९।३२)

नास्ति तेषु जाति विद्या-रूप-कुल-धन क्रियादिभेदः
(नारदसूत्र ७२)

केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः।
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा॥
(भागवत ११—१२)

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
कुब्जायाः किमु नामरूपमधिकं किन्तत् सुदाम्नो धनम्?
वंशः को विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्।
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः॥

'यदि दुराचारी भी अनन्यचित्तसे भजन करता है तो उसको साधु समझना चाहिये, क्योंकि उसने यथार्थ मार्गका ग्रहण किया है। हे अर्जुन! मेरे शरणमें आनेपर पापयोनि, स्त्री, वैश्य और शूद्र भी परमपदको प्राप्त करते हैं। परमेश्वरकी भक्तिके लिये जाति, विद्या और रूप, कुल, धन, क्रिया आदिकी आवश्यकता नहीं है।' श्रीभगवान्‌का वाक्य है कि केवल भावसे ही गोपी, गौ, यमलार्जुन आदि वृक्ष, मृग और दूसरे मूढ़बुद्धि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कालियादि सर्प अनायास ही मुझको पाकर कृतार्थ हो गये। व्याधका क्या आचरण था? ध्रुवका क्या वय था? गजेन्द्रने कौनसी विद्या पढ़ी थी? कुब्जामें क्या सौन्दर्य था? ब्राह्मण सुदामाके पास कौनसा धन था? विदुरका क्या वंश था? यादवपति उग्रसेनके कौनसा बल था? तथापि श्रीभगवान्‌ने इन लोगोंके प्रति विशेष कृपा दिखलायी! इससे सिद्ध होता है कि श्रीभगवान् भक्तिके भूखे हैं और उसीसे प्रसन्न होते हैं, किसी गुणविशेषसे नहीं। इस प्रसंगमें श्रीशबरीजीका उदाहरण भी विचारणीय और परम आदर्श है।

ईश्वरकी प्राप्तिमें सांसारिक व्यवहार त्याग करनेकी भी आवश्यकता नहीं। गीताका वचन है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥
(गीता ८।७)

'अतएव सब समय मुझ (भगवान्)को स्मरण करते हुए युद्ध करो, क्योंकि मन-बुद्धिके मुझमें अर्पण हो जानेपर निस्सन्देह मेरी ही प्राप्ति होगी।' भगवत्प्राप्तिका एकमात्र उपाय है भगवत्स्मरण, जो सबके लिये सुसाध्य है। इसमें द्रव्य, सम्पत्ति, विद्या बल, विदेशयात्रा, तीर्थाटन, अध्ययन, तपस्या, योग, यज्ञ, त्याग, शारीरिक कष्ट और उपवास आदि किसीकी भी आवश्यकता नहीं। दीन, दुखी, असहाय, निर्धन, निर्बल आदि सभी असमर्थ भगवत्स्मरण कर सकते हैं। धनादि सांसारिक पदार्थ, देव-दर्शन, साधुसंगति और तीर्थस्नानादिके लिये स्थानान्तरमें जाना पड़ता है जिसमें व्यय और परिश्रम तो होता ही है परन्तु कितने ही ऐसे भी स्थान हैं जहां सबके लिये पहुंचना भी असम्भव है; पर ईश्वर-प्राप्तिके लिये एक पैर भी चलनेकी आवश्यकता नहीं; क्योंकि अपनी प्राप्तिको सबके लिये सुलभ कर देनेके निमित्त श्रीभगवान् सबके हृदयमें सदा-सर्वदा पूर्ण सत्तासे विराजमान हैं। (गी० १८।६१) यह केवल हम लोगोंका दोष है कि ईश्वरके इतने निकटतम और परम सुलभ होनेपर भी तथा जिनकी प्राप्तिसे समस्त दुःखोंका आत्यन्तिक अभाव और परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है, यह जाननेपर भी हम उनकी अवहेलना करते हैं और ईश्वरके नियमोंका भङ्ग कर भ्रमात्मक बाह्य सुखोंके लिये दीप-पतंगकी भांति दिन-रात मायाकी ज्वालामें दग्ध हो रहे हैं। इसमें मुख्य कमी हमलोगोंके दृढ़ संकल्प न होनेकी है। यथार्थमें हमलोगोंने ईश्वर-प्राप्तिको ही पूर्णरूपसे अपना लक्ष्य नहीं बना लिया है। हमारा मुख्य इष्ट विषय-वासना है, इसीलिये हमें ईश्वर-प्राप्ति नहीं होती। मुण्डकोपनिषद्‌का यह कथन यथार्थ है—

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।

जो आत्माको वरण यानी प्राप्त करनेके लिये दृढ़ संकल्प करता है उसीके लिये परमात्मा अपना रूप प्रकाशित करता है। कलियुगमें तो ईश्वर-प्राप्तिका मार्ग और भी सुगम हो गया है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

कलेर्दोषनिधे राजन् अस्ति ह्येको महान्गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत्॥

कलियुगमें अनेक अवगुण होनेपर भी एक बड़ा गुण यह है कि केवल श्रीभगवान्‌के नाम-कीर्तनसे ही बन्धनसे छुटकारा होकर परमपदकी प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार परम कल्याण और परमानन्दके आलय श्रीभगवान्‌की प्राप्ति परम सुलभ और परम सुगम होनेपर भी हमलोग उसकी ओर ध्यान न देकर नश्वर और परिणाममें दुःखप्रद विषय-वासनाकी ओर ही आकर्षित रहते हैं। यही सबसे बड़ा परम आश्चर्य है!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उद्देश्य-प्राप्तिके मार्ग
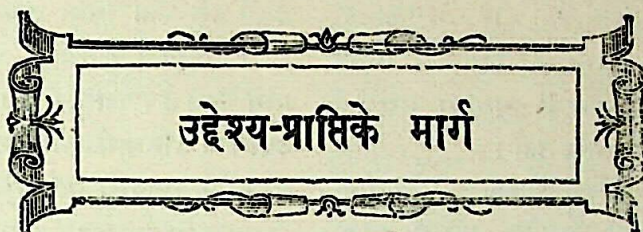
(ले०—पं० बलदेवप्रसादजी मिश्र एम० ए० एल एल० बी०)

ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् (भागवत)

विचारपूर्वक अध्ययन करनेसे विदित होगा कि प्रत्येक मनुष्यका जीवन तीन वृत्तियोंमें विभक्त है। वह या तो चाहता है कि मैं "यह जान लूं, वह जान लूं, इसका रहस्य भलीभांति समझ जाऊं" आदि अथवा वह यह चाहता है कि 'मैं इसको अपने वशमें कर लूं' 'उसपर अपना प्रभाव जमा लूं आदि'। पहली वृत्तिको ज्ञानार्जनी और दूसरीको कार्यकारिणी वृत्ति कहते हैं। इनके अतिरिक्त एक तीसरी वृत्ति और है जिसे चित्तरञ्जिनी वृत्ति कहते हैं। इसी वृत्तिमें मनुष्यके सुख-दुःखकी, हर्ष-शोककी, राग-द्वेषकी, दया-क्षमा इत्यादिकी भावनाएं आ जाती हैं।

इन तीन वृत्तियोंके सिवा चौथी वृत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि जीव और जगत्का (अथवा यों कहना चाहिये कि अहम् और अनहम्का) पारस्परिक सम्बन्ध केवल तीन ही प्रकारसे हो सकता है। या तो जीवका प्रभाव जगत्पर होगा या जगत्का जीवपर अथवा दोनोंका प्रभाव समानरूपसे दोनोंपर होगा। जब जीवका प्रभाव जगत्पर होता है, अर्थात् जब जीवकी शक्ति बाहरी पदार्थोंपर अपना असर दिखाती है (उदाहरणार्थ चलना-फिरना, तोड़ना-मोड़ना, हवन-दान आदि करना) तब कार्यकारिणी वृत्ति जाग्रत होती है। जब जगत्का प्रभाव जीवपर होता है, अर्थात् जब पदार्थोंके आकार प्रकार, तत्त्वरचना आदिका हमें बोध होने लगता है, तब ज्ञानार्जनी वृत्ति जाग्रत होती है, और जब जीव और जगत्का परस्पर इसप्रकार प्रभाव पड़ता है कि पदार्थका ज्ञान गौण होकर सामञ्जस्य अथवा वैषम्यकी भावनाका अनुभव ही प्रधान रह जाता है तब चित्तरञ्जिनी वृत्ति जाग्रत होती है।

मैं जीवको आत्मासे पृथक् मानता हूं। जीव व्यक्तित्वविशिष्ट है, अणु है, संसारसे सम्बद्ध है और आत्मासे चैतन्यता प्राप्त करता है, जीवकी उन तीन वृत्तियोंके अनुसार ही उसके तीन रूप हैं। कार्यकारिणी वृत्तिवाले रूपको 'मन', (Willing self) ज्ञानार्जनी वृत्तिवाले रूपको 'बुद्धि' (Knowing self) और भावनात्मिका वृत्ति (चित्तरञ्जिनी वृत्ति) वाले रूपको 'चित्त' (feeling self) कह सकते हैं। स्वतः उस जीवको हम "अहङ्कार" (Ego) के नामसे सम्बोधित कर सकते हैं। यह जीव स्वभावसे ही पूर्णत्वके लिये स्फूर्तिमान् है अर्थात् वह पूर्ण कर्मिष्ठ (शक्तिशाली) पूर्ण ज्ञानी और पूर्ण आनन्दमय बनना चाहता है। इसी पूर्ण शक्तिको सत्, पूर्ण ज्ञानको चित् और पूर्ण आनन्दको आनन्द कहा गया है और यह बताया गया है कि 'सच्चिदानन्द' ही प्रत्येक जीवका आदर्श पूर्णत्व है। चिदानन्दका ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरा नाम पराशान्ति है और सत्का ही दूसरा नाम शाश्वत् स्थान है। इसप्रकार मानव जीवनका जो उद्देश गीतामें बताया गया है वह "सच्चिदानन्द" से भिन्न नहीं।

जीवनकी प्रत्येक स्फूर्तिमें जीवकी उपर्युक्त तीनों वृत्तियोंका कुछ न कुछ समावेश अवश्य रहता है। यदि हम कोई सुन्दर दृश्य देखते अथवा कोई सरस कविता पढ़ते हैं तो उसमें भी ज्ञानके साथ ही साथ हमारी आँखों इत्यादिकी क्रिया और हमारे चित्तका आनन्द सम्मिलित है। इसीप्रकार यदि हम कोई कार्य करते हैं तो उसमें भी हमारा अनुभव और चित्त-सन्तोष रहता ही है। फिर भी जिस स्फूर्तिमें जिस वृत्तिका प्राधान्य रहता है उसे हम उसी वृत्तिका परिणाम समझा करते हैं। इसप्रकार विचार करनेपर हमें विदित होगा कि हमारी ज्ञानार्जनी वृत्तिका परिणाम है ज्ञान, कार्यकारिणी वृत्तिका परिणाम है कर्म और चित्तरञ्जिनी वृत्तिका परिणाम है भावना। इसी ज्ञानकी चरम सीमाका नाम है अखण्ड चित्, कर्मकी चरम सीमाका नाम है अखण्ड सत् और भावनाकी चरम सीमाका नाम है अखण्ड आनन्द।

पूर्णत्वके लिये तो प्रत्येक जीव स्फूर्तिमान् है परन्तु विशेष प्रयत्नके बिना कोई भी पूर्ण नहीं हो सकता। संसारमें संक्रमके साथ ही प्रतिसंक्रम, उत्थानके साथ ही पतन और विकासके साथ ही ह्रास है। इसलिये यदि जीव संसारके प्रवाहके साथ बहता रहा तो वह उठेगा भी और गिरेगा भी। हां, यदि वह पुरुषार्थ करेगा—विशेष प्रयत्न करेगा तो अवश्य पूर्णत्व-प्राप्तिमें सफल हो सकेगा। यह पुरुषार्थ उसे अपनी उन्हीं तीन वृत्तियोंके अनुसार करना पड़ेगा। यदि उसमें ज्ञानार्जनी वृत्तिका प्राधान्य है तो उसे ज्ञानी अथवा ज्ञानमार्गी बनना पड़गा। यदि उसमें कार्यकारिणी वृत्तिका प्राधान्य है तो उसे कर्मिष्ठ अथवा कर्ममार्गी बनना पड़ेगा और यदि उसमें चित्तरञ्जिनी वृत्तिका प्राधान्य है तो उसे भक्त अथवा भक्तिमार्गी बनना पड़ेगा। जिस उपायसे पूर्णत्वकी उपलब्धि होती है उसे मार्ग कहते हैं। पूर्णत्वकी उपलब्धिके लिये ज्ञानके उपायको ज्ञानमार्ग, कर्मके उपायको कर्ममार्ग और भावनाके उपायको भक्तिमार्ग कहते हैं।

आरम्भमें कहे गये "ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्" का महत्त्व अब पाठकोंको विदित हो गया होगा। भगवान्का कथन है कि श्रेय-प्राप्तिके लिये ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोगको छोड़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। भगवान्का यह कथन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तको लिये हुए है, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है।

यों तो प्रत्येक मनुष्य तीनोंमेंसे कोई एक मार्ग ग्रहण कर सकता है परन्तु प्रत्येक मार्गके खास खास अधिकारी रहा करते हैं। जो मनुष्य संसारको भयावह और दुःखपूर्ण समझकर वैराग्यशील बन गया है उसके लिये ज्ञानमार्ग बड़ा उत्तम होगा। जो संसारमें अनुरक्त होकर विविध कामनाओंका आगार बना बैठा है उसके लिये कर्मयोग बड़ा उत्तम है और जो न तो एकदम विरक्त और न एकदम अनुरक्त है उसके लिये भक्तियोग बड़ा रोचक और सुग्राह्य होगा। संसारानुरागी जीव ज्ञानमार्गको ग्रहण नहीं कर सकते। विरक्तोंको कर्मोंसे क्या मतलब! इसीप्रकार जो मध्यमार्गवाले मनुष्य हैं अर्थात् जो न एकदम विरक्त हैं और न एकदम अनुरक्त हैं उन्हें न तो निष्क्रिय ब्रह्ममें ही आनन्द और रोचकताका अनुभव होगा और न इस निरन्तर विकारशील जगत्में ही। उनका हृदय तो एकमात्र दीनबन्धु जगदाधारकी खोजमें ही अग्रसर होना चाहेगा।

इन्हीं बातोंका विचार करके भगवान्ने भागवतमें कहा है:—

निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु।
तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम्॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान्।
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः॥

अर्थात् जिन मनुष्योंके हृदयमें वैराग्य और त्यागकी मात्रा अधिक है, जो कर्मोंका संन्यास ही करना चाहते हैं उनके लिये ज्ञानमार्ग बड़ा अच्छा है। जो वैराग्यशील चित्तवाले नहीं हैं, जिनके हृदयमें कामनाएं भरी पड़ी हैं, उनके लिये कर्मयोग अच्छा है। पर जो न तो एकदम विरक्त और न एकदम अनुरक्त हैं, जो जगत्को न बिल्कुल हेय समझते हैं और न उपादेय, जो जगत्से बढ़कर जगत्-स्वामीपर श्रद्धा रखते हैं, उनके लिये भक्तियोग परम सिद्धिदायक है।

जिस प्रकार सद्वैद्य रोगीकी नाड़ी देखकर वात, पित्त और कफका तारतम्य पहचान लेता है और प्रकृति तथा रोगका निर्णय करके उचित मात्रामें उचित ओषधि देकर मनुष्यको स्वस्थ कर देता है, उसी प्रकार सद्गुरु मुमुक्षुकी ज्ञान क्रिया और भावना-की वृत्तियोंका पूर्ण अनुभव करके उसके उपयुक्त उत्तम मार्ग निश्चित कर देता है। बस, उसीपर चलकर मुमुक्षु पूर्णत्व प्राप्त कर लेता है।

जो मनुष्य जिस मार्गमें जितना आगे बढ़ चुका है, उसे उससे आगेकी राह दिखायी जाती है। जो कर्मकी अनेक भूमिकाएं पार कर चुका है उसे निष्काम कर्मका आदेश दिया जायगा। जो अभी प्रारम्भकी ही श्रेणीमें है उसे मनके निरोधका उपाय, दैवीसम्पत्ति प्राप्त करने तथा आहार इत्यादिमें सात्त्विकता लानेके उपाय बताये जायंगे। जो ज्ञानके मार्गमें बहुत दूर तक बढ़ चुका है उसे समत्व, निस्त्रैगुण्य, व्यवसायात्मिका बुद्धि, निर्गुण ब्रह्म इत्यादिकी बातें बतायी जायंगी और जो प्रारम्भिक जिज्ञासु है उसे "तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ" (शास्त्रके अनुसार कार्य और अकार्य की व्यवस्था करो) "यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्" (यज्ञ, दान और तप मनुष्योंके लिये हितकर हैं) "एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा" (अमुक बातोंको ज्ञान कहते हैं, अमुकको अज्ञान) ऐसी ही ऐसी बातें बतायी जाती हैं। जो भक्तिके मार्गमें बहुत दूर बढ़ गये हैं उन्हें "वासुदेवः सर्वम्" का अनुभव कराया जाता है और जो इस ओर अभी कदम बढ़ा रहे हैं उन्हें "पत्रं पुष्पं फलं तोयं" इत्यादि-का अर्पण बताया जाता है। साथ ही मनुष्यकी श्रद्धा कहीं आधे रास्तेपर ही विचलित न हो जाय इसलिये बारबार विश्वास दिलानेके लिये प्रतिज्ञाएं की जाती हैं—"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" (ज्ञानके समान पवित्र वस्तु इस संसारमें नहीं है) "नहि कल्याणकृत् कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति" (शुभ कर्म करनेवाला कभी दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता) "कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः" (कर्मसे ही जनक आदिको सिद्धि मिली है) "अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः" (मैं तुम्हें सब पापोंसे मुक्त कर दूंगा; तू चिन्ता न कर) आदि ऐसे ही प्रतिज्ञा-वाक्य हैं जो मुमुक्षुके मनमें अनेक प्रकारके दृढ़ विश्वास उत्पन्न करते हैं।

सद्गुरुका जो कार्य था, जगद्गुरु बनकर भगवान् श्रीकृष्णने वही कार्य गीताद्वारा पूर्ण किया है। वे प्रत्येक मनुष्यकी वृत्तियोंका विचार रखते हुए और उन वृत्तियोंकी विकसित अथवा अविकसित अवस्थाका भी ध्यान रखते हुए सभी मनुष्योंके लायक सभी कुछ कह गये हैं। जो जिस श्रेणीका हो वह अपने लिये अनुकूल साधन चुन सकता है और इसप्रकार निर्बाध होकर अपना कल्याण साधन कर सकता है।

एक बात और है। अनेक प्राचीन आचार्योंने इन तीनों मार्गोंका जो रूप बताया था उसमें संकीर्णता थी। ज्ञान-मार्गी कहते थे कि कर्म अपूर्ण है, इसलिये त्याज्य है। कर्मशृंखला तोड़े बिना वे मुक्तिकी कल्पना ही नहीं कर सकते थे। कर्मोंके साथ ही साथ संसारको भी भ्रान्तिकारिणी, भयावह, सारहीन परन्तु साथ ही साथ अनिर्वचनीया मायाका कार्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानना उनके विचारमें आवश्यक था। कर्ममार्गी कहते थे—

'ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे,
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासंकटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥'

मतलब यह है कि उनके विचारमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश और आदित्य इत्यादि तक सभी कर्म चक्रमें बँधे हुए हैं। कोई भी ऐसा नहीं जो इस कर्म-चक्रसे मुक्त हो। तब इसकी शृंखला तोड़नेका उपाय करना सरासर मूर्खता है। ऐसी स्थितिमें बस वे ही कर्म अभीष्ट हैं जिनसे शाश्वत स्थान और पराशान्तिकी प्राप्ति हो। कतिपय भक्तिमार्गियोंने तो और भी सङ्कीर्णता दिखायी थी। विष्णु बड़े कि शिव, देवी बड़ी कि गणेश, शूद्र स्पृश्य हैं कि अस्पृश्य, मूर्तिपूजा आवश्यक है कि अनावश्यक, लोक-कल्याण उत्तम है कि एकान्त सकाम भगवदाराधना; इसी तरहके न जाने कितने झगड़े खड़े कर इस मार्गमें सङ्कीर्णता ले आये। गीतामें भी ये ही तीनों मार्ग बताये गये हैं। तब यदि गीता-कथित मार्गोंमें भी वही साम्प्रदायिकता–वही सङ्कीर्णता रही तो फिर विशेषता ही क्या रही? यदि इस अद्वितीय ग्रन्थमें भी वैसी ही सङ्कीर्णता रह जाती तो आज यह सार्वभौम धर्मग्रन्थ न माना जाता और आज इसे ईसाई, पारसी, मुसलमान, बौद्ध आदि उसी प्रेमसे न पढ़ते जिस प्रेमसे सब सम्प्रदायों-वाले सभी हिन्दू इसे पढ़ा करते हैं। भगवान्ने इन सङ्कीर्ण भावोंको किसप्रकार दूर किया है यह बात इस ग्रन्थको पढ़नेसे ही विदित हो सकेगी। इस छोटेसे लेखमें उसका दिग्दर्शन कराना कठिन है।

सङ्कीर्णताओंको अलग करनेपर भी ये तीनों मार्ग एक प्रकारसे एकाङ्गी ही रहे जा रहे थे। ज्ञान-मार्गका ध्येय चित्तत्त्व था, कर्ममार्गका ध्येय सत्तत्त्व था और भक्तिमार्गका ध्येय आनन्दतत्त्व था। परन्तु जीव तो सच्चिदानन्द होना चाहता है, केवल सत्-चित् अथवा आनन्द नहीं। इसलिये इस पूर्ण आदर्शकी उपलब्धिके लिये आवश्यक है कि मनुष्य-की तीनों वृत्तियां पूर्ण उन्नत बनायी जायं। तीनों वृत्तियोंकी पूर्ण उन्नतिके लिये तीनों मार्गोंमें भी उचित परिवर्तन करना पड़ेगा। यदि हमें ज्ञानयोग-की चर्चा करनी है तो उसे भक्तिमूलक कर्मप्रधान ज्ञानयोगके रूपमें प्रकट करना होगा। यदि कर्मयोग की चर्चा करनी है तो उसे ज्ञानमूलक भक्तिप्रधान कर्मयोगके रूपमें दर्शित करना होगा और यदि भक्तियोगकी चर्चा करनी है तो उसे ज्ञानमूलक कर्मप्रधान भक्तियोगके रूपमें बताना होगा। इन तीनों मार्गोंका ऐसा रूप हो जानेसे फिर प्रत्येक मार्ग ही एकाङ्गी न होकर पूर्ण (सर्वाङ्गी) बन जाता है और तीनों मार्गोंका पारस्परिक विरोध भी मिट जाता है। भगवान्ने इन तीनों मार्गोंको ऐसा ही रूप दिया है और इस प्रकार प्रत्येक मार्गको सम, सुन्दर, समञ्जस और पूर्ण बना दिया है।

कई लोग ऐसे हैं जो "एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय" की कहावतको न मानकर अपनी सर्वतोमुखी स्फूर्तिके आधारपर तीनों मार्गोंको एकसाथ अपनाना चाहते हैं। भगवान्ने ऐसे मनुष्योंका भी पूरा-पूरा खयाल रक्खा है और उनके लिये इन तीनों मार्गोंको मिलाकर एक समन्वय-मार्ग बना डाला है। इसीलिये गीतामें तीन मार्गोंका अलग अलग वर्णन नहीं किया गया और तीन तरहके अधिकारियोंकी चर्चा भी नहीं की गयी। गीताके प्रथम छः अध्यायोंमें कर्मका, द्वितीय छः अध्यायोंमें भक्तिका और तृतीय छः अध्यायोंमें ज्ञानका विशेष वर्णन मिलेगा सही, परन्तु वे सब अध्याय एक दूसरेसे सम्बद्ध और परस्पर भावोंके पोषक मिलेंगे तथा प्रत्येक खण्डमें दूसरे खण्डोंके सिद्धान्तोंका भी पूरा-पूरा समावेश दिखायी पड़ेगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने सारश्लोकमें भी इसीलिये यद्यपि ज्ञान, कर्म और भक्तिपर एक एक लकीर कही गयी है परन्तु उन तीनोंको इस तरह मिला दिया गया है कि बस एक ही वाक्य बन गया है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन ! तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत !

'हे अर्जुन ! हे भारत ! तुम सर्वभावसे उस ईश्वरकी शरण जाओ जो अपनी मायासे यंत्रारूढ़ सर्वभूतोंको भ्रमाता हुआ उनके (सर्वभूतोंके) हृदय-देशमें स्थित है।'

कहिये पाठक ! हुआ न एक ही वाक्य ? परन्तु यदि विचार कीजिये तो इस एक ही वाक्यमें तीन पद मिले हुए हैं और प्रत्येक पदके अन्दर प्रत्येक मार्गका पूर्ण तत्त्व भरा हुआ है।

आगेके लेखमें इन पदोंकी चर्चा होगी।

जीवात्माका अमरत्व और आवागमनके सिद्धान्तकी सत्यता

(लेखक—श्रीयुगलकिशोरजी 'विमल' बी० ए०, एल-एल० बी०)

'कल्याण'के एक पाठकने जो इस समय देहलीमें निवास कर रहे हैं "कल्याण"में 'श्राद्ध और विज्ञान' नामक लेख पढ़कर लेखकसे यह विचार प्रकट किया कि इस लेखमें इस बातके कोई प्रमाण नहीं दिये गये जिनसे यह सिद्ध होता कि जिसके लिये श्राद्ध-यज्ञ किया जाता है उसकी मृत्युके पश्चात् कोई ऐसी गतियां होती भी हैं या नहीं जिनसे उसे मुक्त करानेके लिये इस यज्ञकी आवश्यकता बतलायी गयी है। इस शंकाको उपस्थित करनेवाले महाशयका अभिप्राय यह था कि पूर्वोक्त लेखमें जीवात्माके अमरत्व और आवागमनके सिद्धान्तकी सत्यताके सम्बन्धमें कोई प्रमाण नहीं दिये गये हैं और लेखकी पूर्तिके लिये ऐसे प्रमाणोंका दिया जाना आवश्यक है। लेखक उन महाशयके इस विचारसे तो सहमत नहीं है कि पूर्वोक्त लेखमें जीवात्माके अमरत्व और आवागमनके सिद्धान्तपर आलोचना करना आवश्यक था परन्तु लेखकको यह स्वीकार है कि इन विषयोंपर स्वतन्त्र लेखमें प्रकाश डाला जाना आवश्यक है, कारण यह कि इनका उस लेखसे घनिष्ठ सम्बन्ध है और वर्तमानकालमें ऐसे प्रमाणोंकी आवश्यकता है।

प्राचीनकालमें भारतवासियोंने आत्मज्ञानके विषयमें बड़े बड़े अनुसन्धान करके अपने अपने अनुभवके अनुसार बड़ी बड़ी रहस्यपूर्ण व्याख्याएं लिखी हैं परन्तु इस सम्बन्धमें कोई वैज्ञानिक अथवा दार्शनिक प्रमाण नहीं मिलते हैं। मालूम होता है कि हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि इन सिद्धान्तोंको स्वतःसिद्ध मानते थे इसलिये वे इनके सिद्ध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं समझते थे। आजकलके लोगोंकी परिस्थिति इसके विरुद्ध है। प्राकृत ज्ञान-विज्ञानने श्रद्धा-विश्वासकी जड़ोंको इतना ढीला कर दिया है कि अब वैज्ञानिक या दार्शनिक प्रमाणोंके बिना कोई भी सिद्धान्त लोगोंमें माननीय नहीं होता। अतः उपर्युक्त महाशयने इन सिद्धान्तोंके सिद्ध करनेवाले प्रमाणोंके अभावको यदि लेखकी एक त्रुटि समझा तो ठीक ही है। कौन जानता है कि उनके सदृश कितने और पाठकोंको यह अभाव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शंकाओंके बन्धनसे निकलनेमें बाधक बन रहा होगा? यह विचार करके लेखकने यही निश्चय किया कि इन सिद्धान्तोंको सिद्ध करनेकी कुछ चेष्टा की जाय। अतएव पाठकोंके सम्मुख कुछ विचार उपस्थित किये जाते हैं। आशा है कि इनसे शङ्काओंका समाधान हो जायगा।

(१) सभी आस्तिक धर्म इस बातको मानते हैं कि परमेश्वर परम न्यायकारी और परम दयालु है। संसारभरके सभी प्राणी चाहे वे किसी गतिमें हों, उसको समान हैं। वह सर्व प्रकारके भेद-भावों और राग-द्वेषोंसे परे है। वह न किसी प्राणीको दूसरोंसे अधिक प्यार करता है और न किसीको मनमाना दुःख-सुख पहुँचाता है। उसके नियम अटल हैं और सबपर समानतासे लागू होते हैं। ऐसी दशामें जब हम यह देखते हैं कि जगत्में कोई राजाके घर पैदा होता है, कोई रंकके; कोई धनवानके यहां जन्म लेता है, कोई दरिद्रीके; कोई बुद्धिमान् उत्पन्न होता है, कोई मूढ़; कोई माताके पेटसे भला चंगा निकलता है, कोई रोगी; तब इन भिन्न भिन्न गतियोंके प्राप्त करनेका अवश्य कोई कारण होना चाहिये। निश्चय ही 'जिसे जैसा चाहा बना दिया, तेरी शान जल्ले जलालहू' वाली बात इस विषयमें सत्य माननेसे परमात्माके उपर्युक्त गुणोंमें असत्यताका दोष आता है। अतः यह मानना पड़ता है कि यह अन्तर अवश्य ही किसी नियमपर निर्धारित होना चाहिये। वह नियम कौन सा हो सकता है इस बातका पता लगानेके लिये जब हम सब ओर ध्यान देते हैं, तब अवश्य ही हम इस परिणामपर पहुंचते हैं कि जीवात्माके अमरत्व और आवागमनके सिद्धान्तके अतिरिक्त और कोई भी ऐसा नियम नहीं है जो प्रत्येक रीतिसे विचार करनेपर जाँचकी कसौटीपर पूरा उतर सके। इस नियमके स्वीकार करनेसे सारी अड़चनें बिल्कुल दूर हो जाती हैं। इसके आधारपर हम सब प्रकारके भेदोंका पूर्णतया उत्तर दे सकते हैं। जो नियम सदा ही जाँचकी कसौटीपर पूरा उतरता रहे, उसकी सत्यता माननेमें किसीको संकोच नहीं हो सकता। यह मान लेनेसे कि यह अन्तर पिछले जन्मोंके कर्मोंके फलसे पड़ जाता है, आत्माका अमरत्व और पुनर्जन्म धारण करना अर्थात् आवागमनमें पड़ना आपसे आप सिद्ध हो जाता है। कारण यह कि जब एक जन्मके कर्मोंके फल भोगनेको दूसरा और दूसरेके फल भोगनेको तीसरा जन्म लेना होता है और यह चक्र जबतक कि कर्म-भोगकी निवृत्ति नहीं होती, बराबर चलता रहता है तब आत्माका अमरत्व और आवागमन-भोगी होना प्रत्यक्ष हो जाता है।

(२) परमात्माकी कारीगरी कैसी विलक्षण है कि प्रत्येक देहधारी जीव वही हाथ, पैर, नाक, कान, मुख, नेत्र आदि रखता हुआ भी अपनी छबि अन्य सब देहधारियोंसे न्यारी रखता है। अंगोंकी बनावटके भिन्न भिन्न होनेके कारण हम प्रत्येक प्राणीको तुरन्त पहचान लेते हैं। यह भिन्नता भी एक ऐसे सिद्धान्तको बतलाती है जो जीवात्माके अमरत्व और आवागमन-भोगी होनेकी सिद्धि करता है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यह बात मालूम होती है कि देहमें जिस जिस प्रकारके अंग होते हैं उसी प्रकारका देहधारीका स्वभाव होता है। अन्य अंगोंकी अपेक्षा मस्तकके विषयमें यह बात विशेषतः लागू होती है। यदि किसीको इस नियमके माननेमें संकोच हो, तो उसे उचित है कि वह सामुद्रिक विद्या (Physiognomy) सम्बन्धी ग्रन्थोंका अध्ययन करे। इस नियमसे यह प्रकट होता है कि एक जन्ममें जीवात्मा अपनी जैसी प्रकृति बना लेता है, उसीके अनुसार वह अगले जन्ममें अपने निवासके लिये देहके अंगोंको धारण करता है। जिस भांति जगत्में प्रत्येक मनुष्य यथासम्भव अपने रहनेके मकानको अपनी इच्छाके अनुसार बना लेता है, उसी भांति जीवात्मा अपने अंगोंके रूप और शक्तिका चुनाव करता है। यदि हम इस नियमको माननीय न समझें तो फिर वही अड़चन खड़ी हो जाती है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि न्यायकारी ईश्वर सबको समान रूप और समान बलवाला क्यों नहीं बनाता। किसीको गोरा, किसीको काला, किसीको मोटा, किसीको दुबला, किसीको रूपवान, किसीको भद्दा आदि बनाकर क्या वह अपने न्यायका स्वयं खण्डन करता है? यदि हम यह मानें कि वह केवल अपनी इच्छासे ऐसा करता है, तो हम उसपर अन्यायका दोषारोपण करते हैं, यदि हम इस अन्तरको भी नियम-बद्ध मानते हैं तो वह नियम अवश्य ही हमें इसी सिद्धान्तकी ओर खींचकर ले जाता है कि जीवात्मा अविनाशी और आवागमन-भोगी है इसलिये वह अपने कर्मोंसे जैसा जैसा अपना स्वभाव बनाता है उन कर्मोंके फल भोगनेके लिये वैसा वैसा देह धारण करता है। अतः सामुद्रिक विद्या भी जीवके अमरत्व और आवागमनके चक्रको सिद्ध करती है।

(३) सारे पण्डित, ज्ञानी, प्रकृतिवादी और विज्ञानी प्रकृतिको अविनाशी बताते हैं। अर्थात् वे यह मानते हैं कि मूल प्रकृति कभी नष्ट नहीं होती। उसके नाम और रूपका परिवर्त्तन होता रहता है परन्तु मूलका नाश नहीं होता। वेदान्त तो यहां तक मानता है कि प्रलयकालमें उसका विस्तार सिमटकर ब्रह्ममें गुप्त हो जानेपर भी प्रकृति बीजरूपसे बनी रहती है। इसी कारण उसे ब्रह्मकी अनादि शक्ति कहा जाता है। ऐसी दशामें जीवात्माको अविनाशी मानना प्रत्यक्षरूपसे निर्मूल प्रतीत होता है क्योंकि आत्मा प्रकृतिसे उत्तम है। आत्माके बिना प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाला देह किसी अर्थका नहीं होता। आत्मा ही देहमें वास करके उससे सब कार्य कराता और उसे जीवित रखता है। जीवात्माके देहसे बाहर निकलते ही देह निकम्मी हो जाती है। अतः अविनाशी प्रकृतिसे श्रेष्ठतर जीवात्मा कैसे विनाशी हो सकता है?

(४) संसारमें जितने आस्तिक-धर्म प्रचलित हैं वे सभी यह बतलाते हैं कि परमेश्वर अविनाशी है और जीव उसका अंश है। यह ऐसे प्रसिद्ध सिद्धान्त हैं कि इनके हेतु किसी धर्मके प्रामाणिक ग्रन्थोंसे इनके सिद्ध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। प्राणी आत्मा और प्रकृतिसे बननेवाली देहका समुदाय है। इस समुदायमें प्रकृतिका अविनाशी होना सबको माननीय होते हुए भी देहका विनाशी होना स्वतः सिद्ध है। इस कारण प्राणीमें ईश्वरके अविनाशी अंश और तदनुरूपता होनेके लिये जीवात्माहीको अमर होना चाहिये।

(५) जिन जिन धर्मोंमें जीवात्माको अविनाशी नहीं माना जाता है, उनमें इस एक जन्मके कर्मोंके बदलेमें सदा ही स्वर्ग या नरक भोगना बताया जाता है। उनका मत है कि मृत्युकालसे क़यामत तक मनुष्य स्वप्नावस्थामें पड़ा रहता है। क़यामतके दिन ईश्वर सबके कर्मोंकी जाँच करके प्रत्येक मनुष्यको प्रतीकार देता है। शुभ कर्म करनेवाले सज्जन इस जन्मके शुभ कर्मोंके बदले सदाके लिये स्वर्ग भोगते हैं। दुष्कर्म करनेवाले दुर्जन सदाके लिये नरकमें कष्ट सहन करते हैं। परन्तु यह नियम इस कारण दोषमय जान पड़ता है कि इसको सत्य माननेसे पूर्ण न्यायकारी ईश्वरका न्याय अपूर्ण ज्ञात होता है। जो कुछ कर्म एक जन्ममें सौ पचास वर्षकी आयु पाकर किये जायं, उनके फल अनन्तकाल तक भोगना निस्सन्देह न्याय नहीं माना जा सकता। इस भांति ऐसे नियमके स्वीकार करनेमें परम न्यायकारी परमेश्वरके न्यायमें बट्टा लगता है। अतः इसे बुद्धिगम्य नहीं कहा जा सकता। बुद्धिगम्य नियम वही हो सकता है जिसमें न्यायकी परिस्थिति ऐसी हो कि कर्मका फल कर्त्ताके हेतु कर्मके कर्मत्वके अनुसार ही फलदायक हो। यह परिस्थिति जीवात्माको अमर माने बिना पैदा नहीं हो सकती। इसलिये यह मानना पड़ता है कि एक जन्मके कर्मोंके फल किसी दूसरे जन्ममें भोगे जाते हैं और तीसरे जन्मके लिये फिर दूसरे जन्मके कर्म-फल उपस्थित हो जाते हैं और मुक्त होने तक यह चक्र बराबर चलता रहता है। इस सिद्धान्तको ग्राह्य माननेसे भी यही परिणाम निकलता है कि आवागमनमें रहनेवाला जीवात्मा अविनाशी और अमर है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गीताका दिव्य सन्देश

(लेखक-साधु टी० एल० वासवानी)

"जीव अमर है-मृत्यु कोई वस्तु नहीं।"

श्रीमद्भगवद्गीता मनुष्यमात्रके लिये ईश्वरीय सन्देश है। इसके उपदेष्टा श्रीकृष्णपर केवल हिन्दुओंका ही एकाधिपत्य नहीं है। समस्त जातियों-सब धर्मोंका उनपर समान अधिकार है। अभी हालहीमें अर्जुनके चरित्रपर आलोचना करते हुए मैंने अपने सार्वजनिक व्याख्यानमें उसके पाण्डित्य, तपस्यापूर्ण जीवन और हस्त-कौशलके सम्बन्धमें अपना हार्दिक श्रद्धाभाव प्रकट किया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अर्जुन बड़ा बांका वीर था-उसकी युद्धचातुरी स्तुत्य थी; किन्तु गीताका दिव्य उपदेश सुननेके पूर्व अहंकार-शून्य होकर-कर्तृत्व-अभिमानसे रहित होकर प्रत्येक कार्य सम्पादित करनेका जीवनोपयोगी पाठ उसने नहीं पढ़ा था। वास्तवमें अकर्तृत्व-बुद्धि ही आध्यात्मिक जीवनका मूल तत्त्व है-लक्ष्य सिद्धिका प्रधान साधन है। सर्वान्तर्यामी प्रभुके पादपद्मोंमें आत्मसमर्पण करके अपने जीवनको संयमपूर्ण और सेवाभाव-परायण बनानेके लिये ही गीताका आह्वान है।

भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, 'मामेकं शरणं व्रज'-मेरी ही शरण ले लो। शोकाकुल अर्जुन उस समय किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा था। इस प्रसंगपर अर्जुनकी कटु आलोचना करना ठीक नहीं। उसके विचारशील दार्शनिक होनेमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है किन्तु विद्वान् एरिस्टोटलके कथनानुसार अव्यवस्थित चित्त होनेके अवसरपर कौन 'शोक-संविग्न-मानस' नहीं हो जाता?—किसके हृदयमें व्याकुलता नहीं होती? अर्जुनका हृदय भी शिथिल, शून्य एवं शोक-सन्तप्त हो गया था—वह वीर हतबुद्धि तथा हतोत्साह हो गया! इस प्रकारकी परिस्थितिका कारण कौरवोंका अत्याचार था-उनका दमनात्मक दुर्व्यवहार था। अर्जुन पर्याप्त शक्तिशाली था, यदि वह चाहता तो अपने न्यायविमुख निष्ठुर भाइयोंके दांत खट्टे कर देता—उनके नीच कर्मोंका फल उन्हें हाथोंहाथ चखा देता; किन्तु साधुतावश उसने सब कुछ धैर्य्यपूर्वक सहा-चूं तक नहीं किया! आखिर, अपने भावोंका दमन-अपने सिद्धान्तोंकी हत्या उसके आत्मसंयम और मनोबलके लिये असह्य हो उठी! फलतः धर्मपूर्ण मोरचाबन्दीके अवसरपर उस पुण्यशीला युद्धस्थलीमें अर्जुनका हृदय शोकाग्निसे धधक उठा। उसके लिये यह धर्म-संकटका समय था—हृदयमें धार्मिक भावोंका पारस्परिक संघर्ष हो रहा था। कर्तव्य-विस्मृतिके क्षणस्थायी आवरणने उसके हृदय-पटलको आच्छादित कर दिया—स्वधर्मपालनकी भावना विलीन हो गयी!

अपने सखा अर्जुनकी कर्तव्य-विमुखताकी समस्या-स्वधर्मत्यागका प्रश्न श्रीकृष्णके सामने उपस्थित है। शरणागत भक्तके संशय और प्रश्नोंकी अवहेलना न करके जगद्गुरु श्रीकृष्णने मनोविज्ञानके सिद्धान्तानुसार अर्जुनको यह अवसर दिया कि वह अपनी प्रवृत्तिके इस कारणपर गम्भीरतापूर्वक विचार करे जिससे उसकी बुद्धिमें यह बात स्पष्ट हो जाय कि इस भावावेश-इस वैराग्योत्तेजना-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का मूल कारण उसका दयापूर्ण हृदय नहीं, प्रत्युत उसकी मनोव्यथाजनित दुर्बलता है। दया-विनम्रता आदि गुणोंसे सम्पन्न व्यक्ति अवश्य ही धन्य है, किन्तु विनयका अर्थ दुर्बलता-शक्तिहीनता कभी नहीं समझ लेना चाहिये। इन दोनोंमें महान् अन्तर है—दिन-रातका भेद है। इसके बाद योगेश्वर श्रीकृष्णने अर्जुनको आत्मशक्ति—आत्ममहत्ताका अनुपम रहस्य इतनी मार्मिक और चित्ताकर्षक शैलीसे समझाया कि उसके हृदयमें अनुपम बलका सञ्चार हो उठा। परमपुरुष श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनमें धैर्य्य, साहस और पराक्रमका आ जाना कोई नयी बात नहीं है। महान् पुरुषोंके प्रभावसे विमूढ़ों और अशक्तोंमें ज्ञान और शक्तिका प्रादुर्भाव हो जाना स्वाभाविक ही है।

अब अर्जुनके सौभाग्यसे विश्वदर्शनकी बारी आयी! विश्वदर्शन क्या था मानो जीवनका वास्तविक रूप—उसका यथार्थ रहस्योद्घाटन था। जीवन, उसकी नियामक शक्ति और उसके नियन्त्रणक्रमका अर्जुनको प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया। उसकी दृष्टिमें अब मृत्यु जीवनसिन्धुमें एक साधारण तरङ्गवत् हो गयी-उसका स्वरूप जीवन-अभिनयके विशाल मञ्चपर छोटासा दृश्यमात्र रह गया। लोगोंने मृत्युका भयङ्कर चित्र खींचकर व्यर्थ ही संसारको भयभीत और कम्पित बना रक्खा है। इसका सफल आक्रमण केवल उन्हींपर होता है जो मायामय संसारको यथार्थ और सच्चा मान बैठे हैं। वास्तवमें जीव अमर है-मृत्यु कोई वस्तु नहीं! गीताका यही महत्त्वपूर्ण रहस्योद्घाटन है-यही उसका सन्देश है-यही उसकी विशेषता है। इस समय भारतवर्षको ही नहीं सारे संसारको इस ईश्वरीय आदेश-पालनकी आवश्यकता है। अमर और अनन्त ईश्वरके पुत्रो! तुम्हें मृत्युका भय कैसा? उठो, शोक छोड़ो कर्तव्य पालन करो—

"निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।"

(अनुवादित)

रे मूढ़ मन !

लख चउरासी ऐसी फाँसीसे उबरि अब ,
आयो देख श्रेष्ठ यह मानुषके तनमें ।
ज्ञान-बल-बुद्धि 'प्रेम' आतम कल्यान हेत ,
कबहूँ लगावे ना फँसावे विषयनमें ॥

धिक् तेरी चाल पै रे नारकी मलिन मूढ़ !
अबहूँ लौं चेत है समय जात छनमें !
मत भरमावै विष खात न अघावै अरे !
काहे न लगावे ध्यान रामके चरणमें !!

—प्रेमनारायण त्रिपाठी 'प्रेम'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दीक्षा-ग्रहण
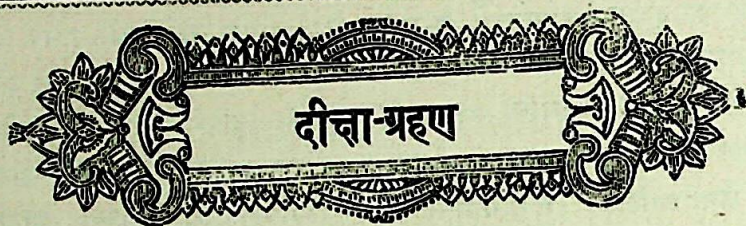
(पूर्वप्रकाशितसे आगे)

इस बातका उत्तर कौन दे ? इसका एक ही उत्तर हो सकता है अर्थात् रोदन। अतः सब लोग एक स्वरसे रोने लगे। भारती अपने आसनपर बैठ गये। निमाईका मुण्डन हो ही चुका था, वे लँगोटी लगाकर और अन्य वस्त्रको ओढ़कर संन्यासीके वाम भागमें बैठ गये। सती-दाहके समय जब चितामें आग लगायी जाती थी तब लोग चुप हो जाते और शोर-गुल या रोना-पीटना एकदम बन्द हो जाता था। उसी प्रकार उस समय भी सन्नाटा छा गया। असंख्य आदमियोंकी भीड़में नाममात्रके लिये गुल-गपाड़ा न रह गया। प्रभु स्वयं शान्त हो गये। दाहिनी ओरको ज़रासा मस्तक झुकाकर उन्होंने भारतीसे कहा—'स्वामीजी, स्वप्नमें मुझे किसी ब्राह्मणने एक संन्यासका मन्त्र बतलाया था। आपको मैं वह मन्त्र सुनाता हूं। देखिये, आप मुझे वही मन्त्र देंगे या कोई और ?' यह कहकर उन्होंने धीरे धीरे भारतीके कानमें वह मन्त्र कह दिया जो उन्होंने पहलेपहल स्वप्नमें सुना था और जिसको सुननेके कारण रोदन किया था।

संन्यासका मन्त्र बहुत ही गुप्त रक्खा जाता है, कोई उसको मालूम नहीं कर सकता। श्रीगौराङ्गके मुखसे संन्यासका वही मन्त्र सुनकर भारतीजीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने कहा, 'यही संन्यासका महामन्त्र है, तुमको जो यह प्राप्त हो गया इसमें विचित्रता ही क्या है ?' इसके साथ ही वे विह्वल हो गये।

भारतीसे मन्त्र ग्रहण करनेके पूर्व श्रीगौराङ्गने इस प्रकार उन्हें मन्त्र देकर शिष्य कर लिया और उनके हृदयमें शक्तिका सञ्चार कर दिया। इस प्रकार श्रीभगवान्‌ने प्रकारान्तरसे अपनी मर्यादाकी रक्षा की। मन्त्र पाकर भारतीजी प्रेममें उन्मत्त हो गये।

अब केशवभारतीने प्रभुके कानमें संन्यासका मन्त्र सुना दिया। भारतीजी उस समय प्रेममें विह्वल थे, अतएव उनके मुँहसे उस मन्त्रकी रस-शोषण शक्ति जाती रही, उसके स्थानपर रस-सञ्चार शक्ति हो गयी।

किन्तु अभी सारा काम समाप्त नहीं हुआ। शास्त्रके अनुसार इस समय निमाईका पुनर्जन्म हुआ, अतएव पूर्व जन्मकी सारी बातें चली गयीं, फलतः पुराना नाम भी न रहा। अब उनका नया नाम रक्खा जायगा। केशवभारती सोचने लगे कि निमाईका नाम रक्खें तो क्या रक्खें, भारतीका शिष्य भारती ही होता है, किन्तु संन्यासियोंके जो नौ सम्प्रदाय हैं उनमें भारती सम्प्रदाय सबसे छोटा है। और उनको इस बातका प्रमाण भी रखनेकी इच्छा न हुई कि जिससे लोग जान सकें कि निमाई भारतीके शिष्य हैं या किसी औरके। सोचते सोचते उन्हें ऐसा एक नाम मिल गया। कोई कहता है कि देववाणीके द्वारा यह नाम उपस्थित होकर सबपर प्रकट हुआ और किसी किसी की राय है कि भारतीजीके हृदयमें सरस्वतीने प्रकट होकर उन्हें यह नाम बतला दिया था। जो हो, भारतीने निमाईकी छातीपर हाथ रखकर कहा—'निमाई, तुमने जीवमात्रको श्रीकृष्ण-चैतन्य कराया है, अतएव तुम्हारा नाम हुआ—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

—श्रीकृष्ण चैतन्य

श्रीजगन्नाथ-शची-नन्दन निमाई अब हो गये भारतीके शिष्य श्रीकृष्ण-चैतन्य। संसारभरके पुरुष अब उनके पितृस्थानीय हुए और स्त्रीमात्र उनकी मातृस्थानीया हुईं। निमाई पण्डितका घर था श्रीनवद्वीपमें, पर श्रीकृष्णचैतन्यके तो एक घर है नहीं, और यदि है तो वह है अनन्त मार्ग। पहले वे शचीके घर रहते थे और अब वृक्षतलवासी हो गये। निमाई पण्डित जब श्रीकृष्ण-चैतन्य हुए तब उनका पुनर्जन्म हुआ, उन्होंने अपनी जननीको छोड़ दिया, अपनी गृहिणीको छोड़ दिया, उन्हें अब नवद्वीपमें जानेतकका अधिकार न रहा। अब वे घरमें न रह सकेंगे। अब उनकी कुछ सम्पत्ति भी न रही, सम्पत्तिको छूने तकका उन्हें अधिकार न रह गया। सम्पत्तिमें उनके लिये रह गयी एक बाँसकी लाठी जिसको 'दण्ड'* कहते हैं; रह गया कमण्डलु अर्थात् लकड़ी या नारियलसे प्रस्तुत जल-पात्र; एक लँगोटी, और दो अँगौछे, तथा ठण्डसे बचनेके लिये एक फटा हुआ कंथा। कृष्ण-चैतन्य नाम धारण करनेसे निमाईको न शय्यापर आराम करनेका अधिकार रहा और न विविध भोजन करके रसनाको परितृप्त करनेका ही। और तो क्या देहमें तेल मलनेका भी उनको अधिकार न रहा।

कृष्ण-चैतन्य अब अकेले हैं, संसारमें उनका अपना और कोई भी नहीं है। एक घटनासे उनका एकाकीपन समझमें आ जायगा। गदाधरने समझा कि प्रभु हमारे हाथसे गये, यह सोचकर वे विनीत होकर उनके चरणोंपर गिरे और कहने लगे—'मैं तुम्हारे साथ चलूँगा।' इसपर श्रीकृष्ण-चैतन्यने बड़ी कड़ाईके साथ कहा—'अब मैं एकाकी हूं, अद्वितीय हूं, अब भला मेरा साथी कौन?' यह सुनकर डरके मारे गदाधर और कुछ न कह सके।

प्रभुका नामकरण होते ही पलभरमें उस नामको एक दूसरेके मुँहसे सबने सुन लिया। तब कोई तो कृष्ण और कोई चैतन्य कहकर चिल्लाने लगे। किन्तु प्रभुका उस समयका भाव देखकर वह कलरव उसी दम शान्त हो गया।

ज्यों ही प्रभुका नामकरण हुआ त्यों ही उन्होंने कहा—'मैं वृन्दावनमें अपने प्राणनाथके समीप जाता हूं, मुझे विदा करो।' यह कहकर वे एकदम भाग खड़े हुए। किन्तु मनुष्योंकी भीड़के मारे वे दौड़ न लगा सके। यह मौक़ा देख भारतीने उठकर कहा—'कृष्ण-चैतन्य, ठहरो, लौटकर अपना दण्ड और कमण्डलु ले जाओ।' हाथमें ये दोनों चीज़ें लेकर वे प्रभुको पुकारने लगे। प्रभुने यह ध्वनि सुन ली, सुनकर वे लौट आये। तब भारतीने उनके हाथमें दण्ड और कमण्डलु दोनों चीज़ें दे दीं।

प्रभु अब भक्तोंके प्रति निर्दय एवं पाषाणवत् कठोर होकर तथा समस्त जीवोंके प्रति सदय होकर उस लोक-सागरके बीच हाथमें दण्ड और कमण्डलु लेकर खड़े हुए। पहले मुख्य भक्तोंने उनके चरणोंपर माथा रखकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और इसके बाद उस अपार भीड़ने 'स्वामी परित्राण करो' कहकर प्रणाम किया।

आज हमारे प्राणप्रिय निमाई 'स्वामीजी' हो गये। भक्तोंके आदरसे विवश होकर श्रीकृष्ण त्रिभङ्ग-भावसे खड़े हो भक्तोंको दर्शनका सुख देते हैं। श्रीगौराङ्ग, इस नयी उम्रमें, कङ्गालका वेष धारण करके और हाथमें दण्ड-कमण्डलु लेकर हरि-नामकी भिक्षा माँगनेके लिये सब लोगोंके आगे खड़े हुए। लम्बे-चौड़े, सुबलित अङ्गवाले, परम सुन्दर, सुवर्णकान्तिविशिष्ट नवीन पुरुष-रत्नने जब कङ्गालका वेष धारण करके आँखोंमें आँसू लाकर जीवमात्रके आगे कृपाकी प्रार्थना की तब सभीने सोचा 'हे भगवन्, तुम्हीं साधु हो, तुम्हीं भक्त हो, तुम्हीं दयामय और तुम्हीं महाजन हो, तुमको धन्य है। पतिव्रता जो स्वामीकी चितामें

* हमारे निमाईने कुछ दिन बाद इसमेंसे एक (दण्ड) को तोड़कर फेंक दिया था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जलकर प्राण दे देती है, उसको वह निष्ठा तुम्हींसे प्राप्त हुई है। राज्य-सुखको त्याग करके साधु लोग जिस शक्तिसे कठोर तप किया करते हैं वह उन्हें तुम्हींसे प्राप्त हुई है।

उस समय ऐसा जँचने लगा मानों अनन्त कोटि ब्रह्माण्डके ईश्वर दीनभाव और दीनवेषसे, कातर स्वरमें, हाथ जोड़कर मनुष्यरूप कीटसे कृपाकी भिक्षा माँगते हुए मिले, जैसे यह कह रहे हों कि—'हे प्राणियो, हमारे सम्पूर्ण उद्देश्यको न समझ सकनेपर हमपर क्रोध मत करना। हम निरपराध हैं, कमसे कम कुछ देख भालकर हमारी निन्दा करना' ठहरो, धीरे धीरे तुम समझ लोगे कि हमारा कुछ भी दोष नहीं है। तुम लोगोंको मालूम है कि हम तुम्हारे हैं, तुम्हारे भलेके लिये ही यह सब है, यह जो दुःख देख रहे हो सो यह भी तुम्हारे मङ्गलके लिये है, संसारमें यह जो प्रलोभनकी अनेक वस्तुएं हैं ये भी मङ्गलके लिये हैं। प्राण तुम लोगोंके लिये व्याकुल हैं, तुम लोग और कब तक हमें भूले रहोगे?'

श्रीगौराङ्गकी देह चन्दन और फूल-मालासे सुशोभित थी। उनकी लाल आँखोंसे शीतल धाराएँ बह रही थी। उनके बायें हाथमें दण्ड और दाहिनेमें कमण्डलु था। वे दण्डके सहारे विनीत भावसे खड़े खड़े सब लोगोंसे बोले—'माता और पिता, मुझे अनुमति दो; मैं व्रजको जाऊंगा। मेरे माता-पिता, आशीर्वाद दो, जिससे व्रजमें मुझको मेरे प्राणनाथ मिल जायं। माई-बाप, जाते समय मेरी एक और भिक्षा है। तुम सब लोग मेरे श्रीहरिका भजन करो, वे बड़े कृपामय हैं।'

कृपालु पाठको, तुम क्या प्रभुको भिक्षा न दोगे? इस वेषमें अपने दरवाज़ेपर क्या उनको सदा खड़े किये रहोगे?

वहांपर जो लोग उपस्थित थे उन्होंने सङ्कल्प किया कि अब हम घर-गृहस्थीमें न रहेंगे। श्रीगौराङ्ग जब कङ्गालका वेष धारण करके जन-समाजके आगे खड़े हुए थे तब जो तरङ्ग उठी थी उसके आभासमात्रका वर्णन किया जा सकता है, और वही करनेकी चेष्टा की जाती है। सोचिये कि चतुर्दश-वर्षीया बालिका विधवा हो गयी है, बालिकाके रूपकी प्रशंसा करना व्यर्थ है, किन्तु बाह्य सौन्दर्यकी ओर उसकी दृष्टि नहीं है। माथेमें ऐसे सुन्दर केश हैं कि जिनको देखकर दुनिया लट्टू हो जाती है, किन्तु वे कन्धोंपर इधर उधर बिखरे पड़े हैं। धूलमें लोटनेसे केशोंमें धूल लिपट गयी है। बालिका अपूर्व पट्टवस्त्र पहने है, उसकी देहभरमें मणि-मुक्ताके आभूषण हैं। पतिका वियोग हो जानेके कारण वह देवगृहमें गयी और वहां ठाकुरजीको प्रणाम करके उसने आत्मसमर्पण कर दिया। उसने कहा-'इस दीन कङ्गालिनको चरणोंमें स्थान दो।' और फिर करती क्या है कि उस पट्टवस्त्रको उतारकर फटा पुराना मैला वस्त्र पहनती है, फिर ठाकुरजीके आगे उस बहुमूल्य वस्त्रको रखती है; देहपरसे मणि-मुक्ता उतारती है और ठाकुरजीके आगे रखती है। इसके बाद प्रसन्नतापूर्वक कहती है—'भगवन्! इस द्रव्यकी अब मुझे कुछ आवश्यकता नहीं, तुम इसको ग्रहण करो और इसके बदले मुझे अपने श्रीचरणोंकी रज दो।'

भाग्यसे किसीको यदि ऐसी घटना देखनेको मिले और यदि वह मद्यप या लम्पट भी हो तो भी, वह उसी दम सङ्कल्प करता है कि 'तुच्छ सुखके लिये मैं अब कुकर्म न करूंगा।' यदि कन्याके माता-पिता अथवा अन्यान्य घनिष्ठ सम्पर्क-वाले इस चित्रको देख लें तो उनका हृदय विदीर्ण हो जाय, संसारके प्रति उदासीनता हो जाय और श्रीभगवान्‌के चरणोंकी ओर मन आकृष्ट हो जाय।

ऐसे ही नवीन संन्यासीको देखकर सभी जीव रो रोकर व्याकुल हो गये। सभीने सोचा कि अब अपने घर न जायंगे। उस समय पिता अपने पुत्रको, स्त्री अपने स्वामीको, रोगी अपने रोगको, कुल-वधू लज्जाको और वणिक् अपने धनको भूल गये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
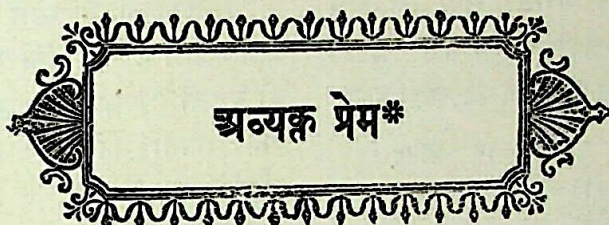
हिरदै भीतर दव बलै, धुवाँ न परगट होय। जाके लागी सो लखै, की जिन लाई सोय ॥—कबीर

गनकी आगका धुवाँ कौन देख सकता है। उसे या तो वह देखता है, जिसके अन्दर वह जल रही है, या फिर वह देखता है, जिसने वह आग सुलगाई है। भाई, प्रेम तो वही जो प्रकट न किया जाय। सीनेके अन्दर ही एक आग-सी सुलगती रहे, उसका धुवाँ बाहर न निकले। प्रीति प्रकाशमें न लायी जाय। यह दूसरी बात है, कि कोई दिलवाला जौहरी उस प्रेम-रत्नके जौहरको किसी तरह जान जाय। वही तो सच्ची लगन है जो गलकर, घुलकर, हृदयके भीतर पैठजाय; प्यारेका नाम मुहँसे न निकलने पाय, रोम-रोमसे उसका स्मरण किया जाय। कबीरदासकी एक साखी है—

प्रीति जो लागी घुल गई, पैठि गयी मनमाहिं।
रोम-रोम पिउ-पिउ करै, मुखकी सरधा नाहिं॥

प्रेम-रसके गोपनमें ही पवित्रता है। जो प्रेम प्रकट हो चुका, बाज़ारमें जिसका विज्ञापन कर दिया गया, उसमें पवित्रता कहाँ रही? वह तो फिर मोल-तोल-की चीज़ हो गयी। कोविद-वर कारलाइल कहता है—

Love unexpressed is sacred.

अर्थात्, अव्यक्त प्रेम ही पवित्र होता है। जिसके जिगरमें कोई कसक है, वह दुनियामें गली-गली चिल्लाता नहीं फिरता। जहाँ-तहाँ पुकारते तो वे ही फिरा करते हैं, जिनके दिलमें प्रेमकी वह रस-भरी हूक नहीं उठा करती। ऐसे बने हुए प्रेमियोंको प्रेमदेवका दर्शन कैसे हो सकता है? महात्मा दादूदयाल कहते हैं—

अन्दर पीर न ऊभरै, बाहर करै पुकार।
'दादू' सो क्योंकरि लहै, साहिबका दीदार॥

किसीको यह सुनानेसे क्या लाभ, कि मैं तुम्हें चाहता हूं, तुमपर मेरा प्रेम है? सच्चे प्रेमियोंको ऐसी विज्ञापनबाज़ीसे क्या मिलेगा? तुम्हारा यदि किसीपर प्रेम है, तो उसे अपनी हृदय-वाटिकामें ही अंकुरित, पल्लवित, प्रफुल्लित और परिफलित होने दो। जितना ही तुम अपने प्रियको छिपाओगे, उतना ही वह प्रगल्भ और पवित्र होता जायगा। बाहरका दरवाज़ा बन्द करके तुम तो भीतरका द्वार खोल दो। तुम्हारा प्यारा तुम्हारे प्रेमको जानता हो तो अच्छा, और उससे बेख़बर हो तो भी अच्छा। तुम्हारे बाहरके शोर-गुलको वह कभी पसन्द न करेगा। तुम तो दिलका दरवाज़ा खोल-कर बेख़बर हो बैठ जाओ। तुम्हारा प्यारा राम ज़रूर तुम्हें मिलेगा—

सुमिरन सुरत लगाइकै, मुखतें कछू न बोल।
बाहरके पट देइकै, अन्तरके पट खोल॥

—कबीर

प्रीतिका ढिंढोरा पीटनेसे कोई लाभ?

जो तेरे घट प्रेम है, तौ कहि-कहि न सुनाव।
अन्तरजामी जानिहैं, अन्तरगतका भाव॥

—मलूकदास

* गीता प्रेससे प्रकाशित श्रीवियोगी हरिजी लिखित 'प्रेमयोग' नामक ग्रन्थसे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुम तो प्रेमको इस भाँति छिपा लो, जैसे माता अपने गर्भस्थ बालकको बड़े यत्नसे छिपाये रहती है, ज़रा भी उसे ठेस लगी कि वह क्षीण हुआ—

जैसे माता गर्भको राखै जतन बनाइ।
ठेस लगै तौ छीन हो, ऐसे प्रेम दुराइ॥
—गरीबदास

प्रेमका वास्तविक रूप तुम प्रकाशित भी तो नहीं कर सकते। हाँ, उसे किस प्रकार प्रकाशमें लाओगे? प्रेम तो गूँगा होता है। इश्क़को बेज़ुबान ही पाओगे। ऊँचे प्रेमियोंकी तो मस्तानी आँखें बोलती हैं, जुबान नहीं। कहा भी है—

Love's tongue is in the eyes.

अर्थात्, प्रेमकी जिह्वा नेत्रोंमें होती है। क्या रघूत्तम रामका विदेह-नन्दिनीपर कुछ कम प्रेम था? क्या वे मारुतिके द्वारा जनकतनयाको यह प्रेमाकुल सन्देश न भेज सकते थे, कि 'प्राण-प्रिये! तुम्हारे असह्य वियोगमें मेरे प्राण-पक्षी अब ठहरेंगे नहीं; हृदयेश्वरी! तुम्हारे विरहने मुझे आज प्राण-हीन-सा कर दिया है।' क्या वे आज-कलके विरह-विह्वल नवल नायककी भाँति दस-पाँच लम्बे-चौड़े प्रेम-पत्र अपनी प्रेयसीको न भेज सकते थे? सब कुछ कर सकते थे, पर उनका प्रेम दिखाऊ तो था नहीं। उन्हें क्या पड़ी थी जो प्रेमका रोना रोते फिरते! उनकी प्रीति तो एक सत्य, अनन्त और अव्यक्त प्रीति थी, हृदयमें धधकती हुई प्रीतिकी एक ज्वाला थी। इससे उनका सँदेसा तो इतनेमें ही समाप्त हो गया कि—

तत्व प्रेमकर मम अरु तोरा।
जानत, प्रिया, एक मन मोरा॥
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं।
जानि प्रीति-रस इतनेहि माहीं॥ —तुलसी

इस 'इतनेमें' ही उतना सब भरा हुआ है, जितनेका कि किसी प्रीति-रसके चखनेहारेको अपने अन्तस्तलमें अनुभव हो सकता है। सो, बस—

जानि प्रीति-रस इतनेहि माहीं।

प्रीतिकी गीति कौन गाता है, प्रेमका बाजा कहाँ बजता है और कौन सुनता है, इन सब भेदों-को या तो अपना चाह-भरा चित्त जानता है या फिर अपना वह प्रियतम। इस रहस्यको और कौन जानेगा?

सब रग ताँत, रबाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुनि सकै, कै साईं कै चित्त॥
—कबीर

जायसीने भी खूब कहा है—

हाड़ भये सब किंगरी, नसें भईं सब ताँति।
रोम-रोम तें धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भाँति॥

प्रेम-गोपनपर किसी संस्कृत कविकी एक सूक्ति है—

प्रेमा द्वयो रसिकयोरपि दीप एव
　　हृद्व्योम भासयति निश्चलमेव भाति।
द्वारादयं वदनतस्तु बहिर्गतश्चेत्
　　निर्वाति दीपमथवा लघुतामुपैति॥

दो प्रेमियोंका प्रेम तभीतक निश्चल समझो, जबतक वह उनके हृदयके भीतर है। ज्यों ही वह मुखद्वारसे बाहर हुआ, अर्थात् यह कहा गया कि 'मैं तुम्हें प्यार करता हूं' त्यों ही वह या तो नष्ट हो गया या क्षीण ही हो गया। दीपक गृहके भीतर ही निष्कम्प और निश्चल रहता है। द्वारके बाहर आनेपर या तो वह क्षीण-ज्योति हो जाता है या बुझ ही जाता है। वास्तवमें, पवित्र प्रेम एक दीपक-के समान है। इसलिये चिराग़ेइश्क़को, भाई, जिगर-के अन्दर ही जलने दो। उस अँधेरे घरमें ही तो आज उँजेलेकी ज़रूरत है।

उस प्रियतमको पलकोंके भीतर क्यों नहीं छुपा लेते? एकबार धीरेसे यह कहकर उसे, भला, बुलाओ तो—

आओ प्यारे मोहना! पलक झाँपि तोहि लेउँ।
ना मैं देखौं और कों, ना तोहि देखन देउँ॥

आँखोंकी तो बनाओ एक सुन्दर कोठरी और पुतलियोंका बिछा दो वहाँ पलंग। द्वारपर पलकों-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की चिक भी डाल देना। इतनेपर भी क्या वह हठीले हज़रत न रीझेंगे? क्यों न रीझेंगे—

नैनोंकी करि कोठरी, पुतली-पलँग बिछाय।
पलकोंकी चिक डारिके, छिनमें लिया रिझाय॥
—कबीर

जब वह प्यारा दिलवर इस तरह तुम्हारे दर्द-भरे दिलके अन्दर अपना घर बना लेगा, तब तुम्हें न तो उसे कहीं खोजना ही होगा और न चिल्ला चिल्लाकर अपने प्रेमका ढिंढोरा ही पीटना होगा। तब उस हृदय-विहारीके प्रति तुम्हारा प्रेम नीरव होगा। वह तुम्हारी मतवाली आँखोंकी प्यारी-प्यारी पुतलियोंमें जब छुपे-छुपे अपना डेरा जमा लेगा, तब उसका प्यारा दीदार तुम्हें ज़र्रे-ज़र्रेमें मिलेगा। घट-घटमें उसकी झलक दिखायी देगी। प्रेमोन्मत्त कवीन्द्र रवीन्द्र, सुनो, क्या गा रहे हैं—

My beloved is ever in my heart
That is why I see him everywhere.
He is in the pupils of my eyes
That is why I see him everywhere.

अर्थात्—

जीवन-धन मम प्रान-पियारो सदा बसतु हिय मेरे,
जहाँ बिलोकैं, ताकैं ताकों कहा दूरि कह नेरे।
आँखिनकी पुतरिनमें सोई सदा रहै छवि घेरे,
जहाँ बिलोकैं, ताकैं ताकों कहा दूरि कह नेरे॥
—कृष्णविहारी मिश्र

अपने चित्तको चुरानेवालेका ध्यान तुम भी एक चोरकी ही तरह दिलके भीतर किया करो। चोरकी चोरके ही साथ बना करती है। जैसेके साथ तैसा ही बनना पड़ता है। कविवर विहारी-का एक दोहा है—

करौ कुबत जगु, कुटिलता तजौं न, दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय बसत, त्रिभंगी लाल॥

संसार निन्दा करता है तो किया करे, पर मैं अपनी कुटिलता तो न छोड़ूँगा। अपने हृदयको सरल न बनाऊँगा, क्योंकि हे त्रिभंगी लाल! तुम सरल (सीधे) हृदयमें बसते हुए कष्ट पाओगे। टेढ़ी वस्तु सीधी वस्तुके भीतर कैसे रह सकती है? सीधे मियानमें कहीं टेढ़ी तलवार रह सकती है? मैं सीधा हो गया तो तीन टेढ़वाले तुम मुझमें कैसे बसोगे? इससे मैं अब कुटिल ही अच्छा! हाँ, तो अपनी प्रेम-साधनाका या अपने प्यारेके ध्यानका कभी किसीको पता भी न चलने दो, यहाँकी बात ज़ाहिर कर दो, यहाँके पट खोल दो, पर वहाँका सब कुछ गुप्त ही रहने दो, वहाँके पट बन्द ही किये रहो। यह दूसरी बात है, कि तुम्हारी ये लाचार आँखें किसीके आगे वहाँका कभी कोई भेद खोलकर रख दें।

प्रेमको प्रकट कर देनेसे क्षुद्र अहंकार और भी अधिक फूलने-फलने लगता है। 'मैं प्रेमी हूँ'—बस, इतना ही तो अहंकार चाहता है। 'मैं तुम्हें चाहता हूँ'—बस, यही खुदी तो प्रेमका मीठा मजा नहीं लूटने देती। ब्रह्मात्मैक्यके पूर्ण अनुभवीको 'सोऽहं', सोऽहं' की रट लगानेसे कोई लाभ? महाकवि ग़ालिबने क्या अच्छा कहा है—

क़तरा अपना भी हक़ीक़तमें है दरिया, लेकिन
हमको तक़लीदे तुनक ज़र्फ़िये मंसूर नहीं।

मैं भी बूँद नहीं हूँ, समुद्र ही हूँ—जीव नहीं, ब्रह्म ही हूँ—पर मुझे मंसूरके ऐसा हलकापन पसन्द नहीं। मैं 'अनलहक़' कह-कहकर अपना और ईश्वरका अभेदत्व प्रकट नहीं करना चाहता। जो हूँ सो हूँ, कहनेसे क्या लाभ। सच बात तो यह है, कि सच्चा प्रेम प्रकट किया ही नहीं जा सकता। जिसने उस प्यारेको देख लिया वह कुछ कहता नहीं, और जो उसके बारेमें कहता फिरता है, समझ लो, उसे उसका दर्शन अभी मिला ही नहीं। कबीरकी एक साखी है—

जो देखै सो कहै नहिं, कहै सो देखै नाहिं।
सुनै सो समझावै नहीं, रसना दृग श्रुति काहि॥

इसलिये प्रेम तो, प्यारे, गोपनीय ही है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विवेक-वाटिका

देवता और पितरोंके प्रति तुम्हारा जो कुछ कर्तव्य है उसे कभी न त्यागो, माताकी देवतारूपसे उपासना करो, पिताकी देवतारूपसे उपासना करो, आचार्यकी देवतारूपसे उपासना करो, अतिथिकी देवतारूपसे उपासना करो, जो कार्य निन्दासे रहित हैं उनको करो। —उपनिषद्

❁ ❁ ❁ ❁

जो मनुष्य प्रकाशमें आनेके पूर्व ही काम और क्रोधके वेगको रोक सकता है वही योगी है और वही सुखी है। —श्रीमद्भगवद्गीता

❁ ❁ ❁ ❁

जो सत्पुरुष हैं, जो किसी भी प्राणीकी किसी प्रकार हिंसा नहीं करते, किसीका जी नहीं दुखाते, जिन्होंने भगवान्‌के भावसे पूर्ण होकर सारी कामनाएं छोड़ दी हैं वे ही भगवान्‌के भक्त हैं। —श्रीमद्भागवत

❁ ❁ ❁ ❁

परलोकमें माता, पिता, पुत्र, स्त्री और कोई भी सम्बन्धी सहायताके लिये खड़ा नहीं होता, वहां तो धर्म ही सहायक होगा। —मनुमहाराज

❁ ❁ ❁ ❁

जो मनुष्य क्रोधरहित होता है, प्राणियोंकी मन, वाणी, शरीरसे हिंसा नहीं करता, किसीसे ईर्षा नहीं करता और निष्कपट व्यवहार करता है वह सौ वर्ष जीता है। —भीष्म पितामह

❁ ❁ ❁ ❁

परमेश्वरकी इच्छा यह है कि तुम पवित्र बनो, व्यभिचारसे बचे रहो, तुममेंसे हर एक पवित्रता और आदरके साथ भगवान्‌की प्रार्थना करना जाने, तुम सब आपसमें प्रेम करो क्योंकि परमेश्वर प्रेमकी ही शिक्षा देता है। —ईसामसीह

❁ ❁ ❁ ❁

गृहस्थको पाँच अशुभ प्रवृत्तियोंसे बचना चाहिये—(१) हिंसा (२) चोरी (३) व्यभिचार (४) असत्य और (५) व्यसन। —बुद्धदेव

❁ ❁ ❁ ❁

शम, दम, व्रत और नियमपरायण विश्वहितैषी मुमुक्षु मनुष्य निष्कपटभावसे जो कुछ भी क्रिया करता है, उसीसे उसके गुण बढ़ते हैं। —महावीर स्वामी

❁ ❁ ❁ ❁

दिनभर बुरी भावनाओं और बुरे कर्मोंसे बचकर रहना रातभरके भजनसे बढ़कर है। —डिमास्थिनीज़

❁ ❁ ❁ ❁

सत्यको जाननेके लिये सत्यके अतिरिक्त दूसरी सारी इच्छाओंका त्याग कर दो और जब संशयहीन सत्यका पता लग जाय तो तुरन्त उसीके अनुसार चलनेका दृढ़ संकल्प कर लो। —राल्फ वाल्डो ट्राइन

* * * *

विरले ही मनुष्य अपनी इच्छा और मनके विरुद्ध बर्त्ताव कर सकते हैं, ऐसा उपदेश तो बहुत लोग दिया करते हैं, परन्तु इसका पालन बहुत थोड़े कर सकते हैं। —मोलिन्स

* ❁ ❁ ❁

संसार क्षण-क्षणमें नाश हो रहा है, इस मिथ्या नाम-रूपके ढेरको देखकर भूलना नहीं चाहिये। —दयाबाई

❁ ❁ ❁ ❁

वह वीर नहीं है जिसने शरीरको चकनाचूर कर डाला, बलिहारी है उस वीरको जो मनको जीतकर खड़ा है। —दरिया साहेब

❁ ❁ ❁ ❁

जिन्होंने वासनाओंको पददलित किया है वे ही मुक्त हुए हैं, जिन्होंने ईर्षाका त्याग किया है उन्हींको प्रेमकी प्राप्ति हुई है और जिन्होंने धैर्य धारण किया है वे ही शुभ परिणामको प्राप्त कर सके हैं। —हसन बसरी

❁ ❁ ❁ ❁

प्रेमभक्तिमें गद्‌गद होकर एकान्त हृदयसे जिस तरह परमात्माकी प्रार्थना करते हो, प्रार्थनाके बाद उसी तरह कठिनसे कठिन कर्त्तव्यके पालनमें लग जाओ और उसे पूरा करो, नहीं तो तुम्हारी पूजा व्यर्थ है। —टेरेसा

❁ ❁ ❁ ❁

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्मयोग
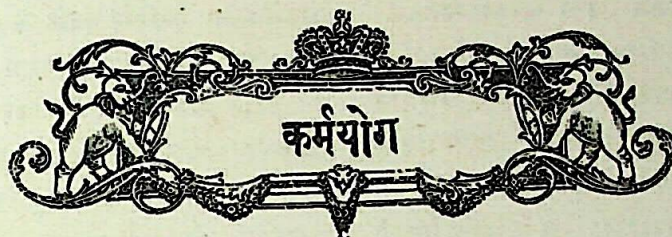
(लेखक—स्वामी श्रीभोलेबाबाजी)

कम्मा क्यों बैठा है?' 'क्रिया जड़ है, दुःखरूप है और असत् है, फिर क्रिया करना वृथा ही है।' क्रिया जड़, दुःखरूप और असत् है, तो क्रियाका अभाव भी तो ऐसा ही है, कल्पित वस्तुका अभाव भी कल्पित वस्तु-स्वरूप ही होता है; क्रिया, क्रियाका अभाव दोनों ही जड़, दुःखरूप और असत् हैं। उनका द्रष्टा तू उनसे भिन्न चेतन, सुखरूप और सत् है, इसलिये उनसे विलक्षण है, फिर क्रियासे तेरी क्या हानि है? कुछ भी नहीं! देहका स्वभाव क्रिया है, तू स्वभावसे अक्रिय है। अक्रियको अक्रिय देख और क्रियावालेको क्रियावाला देख! इसीका नाम कर्मयोग है। यदि तूने अक्रिय और क्रियको सम्यक् रीतिसे पहचान लिया है तो तू सिद्ध है, सिद्धावस्थाके कर्म कर। यदि नहीं जाना है, तो अपनेको असंग और अक्रिय समझकर निष्कामभावसे, फलकी इच्छासे रहित हो अपना धर्म समझकर ईश्वरके अर्पणरूप कर्म कर, इससे तू अपने अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा सत्यासत्यका विवेक करके, आनन्द-स्वरूप आत्माका साक्षात् करके आनन्दस्वरूप ही हो जायगा। है तो तू अब भी आनन्दस्वरूप परन्तु अज्ञानसे तुझे अपने आनन्दस्वरूपका अनुभव नहीं होता, कर्मयोगसे तेरा अज्ञान निवृत्त हो जायगा और तू जैसा असंग, आनन्दस्वरूप है, वैसा ही तुझे अनुभव होने लगेगा। जैसा हो उसको ठीक वैसा ही जानना, इसीका नाम ज्ञान है। एकको दूसरा जानना, इसीको वेदवेत्ता अज्ञान कहते हैं। यदि तू ज्ञानी है तो कर्म कर और अज्ञानी है, तो भी कर्म कर! निकम्मा, आलसी बनना ठीक नहीं है! शूर होकर कायर बनना, सिंह होकर गीदड़ बन जाना, विद्वान् होकर मूर्खोंमें नाम लिखाना, बलवान होकर निर्बल हो जाना और पुरुष होकर नपुंसक कहलाना, शास्त्रवेत्ताओं-का सिद्धान्त नहीं है। खड़ा हो जा, कमर कसकर, आलस्यको खूँटीपर टाँगकर, निःशंक होकर, सुन ले नीचेका दृष्टान्त कान खोलकर!

एक साधुने एक दिन जंगलमें बिना पैर-पंखका एक कौवा देखा! सोचने लगा कि इसको कौन खिलाता होगा? इतनेमें ही एक श्येन पक्षी मांसका लोथड़ा लेकर आया और कौवेको खिलाने लगा। यह देखकर साधु बहुत विस्मित हुआ और मनमें विचार करने लगा—'जब सबका कर्ता-धर्ता ईश्वर सबको आहार पहुंचाता है, तो मुझे रोटीके लिये दर-दर क्यों भटकना चाहिये।' ऐसा विचार कर साधु एकान्तमें जा बैठा और तीन रात-दिन-तक बिना अन्न-जल पड़ा रहा! चौथे दिन आकाश-वाणी हुई 'अरे मूर्ख! कौवा तो बिना पैर-पंखका था, तेरे तो हाथ, पैर, बुद्धि आदि सभी समर्थ हैं, फिर तू दूसरोंका आसरा क्यों देखता है? लोमड़ीके समान दूसरेके उच्छिष्टपर निर्भर मत रह, सिंहके समान शिकार मार, स्वयं खा और दूसरोंको खिला!' इस कथाका सार यह है कि निकम्मा निरु-द्यमी मनुष्य मृतकके समान है, मनुष्यको जीते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुए मुर्दोंमें अपनी गणना क्यों करानी चाहिये। हाथ-पैर काम करनेके लिये मिले हैं, बैठे रहनेके लिये नहीं! हाथ-पैर प्रत्यक्ष हैं, प्रत्यक्षसे अनुमान होता है कि ये काम करनेको मिले हैं। श्रुति कहती है, सौ वर्षतक कर्म करता हुआ जी; स्मृति भी कहती है कि न करनेसे करना श्रेष्ठ है, लोकोक्ति भी है, काम करनेवाली कुञ्जी चमकती रहती है, उसमें जंग नहीं लगता 'Working key always shines bright.' 'तब क्या करूं? आप ही बताइये।' 'अच्छा तो सुन, बताता हूं।'—

कर्तव्य

भाई! स्वधर्म करना ही श्रेष्ठ है, पर-धर्म भय-को देनेवाला है, अपना ही धर्म कर! यदि तू ब्राह्मण है, तो यजमानका हित चाहा कर, यज्ञको विष्णुरूप जान, देवताको बिना जाने यज्ञ मत कराया कर! यदि तू राजा है, तो प्रजाका रञ्जन ही तेरा रञ्जन है। भगवत् भी जनरञ्जन, भव-भय-भञ्जन हैं, यदि तू प्रजाका रञ्जन करेगा तो तुझे भी भय नहीं है। यदि तू वैश्य है, तो पोष्यवर्गका पोषण करके अपना पोषण किया कर, विश्वपोषक भगवान् तेरा भण्डार पूर्ण रक्खेंगे! यदि तू अध्यापक है तो लोक-परलोक तथा परमार्थकी शिक्षा छात्रोंको दिया कर, तेरे तीनों लोक सुधर जायंगे! यदि तू वकील है, तो मवक्किलसे पहले ही साफ कह दिया कर कि तेरा मुकद्दमा चलेगा या नहीं, फिर भी वह न माने तो मुकद्दमा दायर कर दिया कर और जैसे तू जिरह Cross question मुद्दई, मुद्दालेहसे किया करता है, इसीप्रकार अपने आपसे भी किया कर कि तू यहां क्यों आया है, ऐसा करनेसे तेरी बुद्धि विशेष शुद्ध और तीव्र हो जायगी! फिर तू मुकद्दमा कभी नहीं हारेगा! यदि तू वैद्य है, तो बिना रोगका निदान किये, किसी रोगीपर हाथ मत डाल। जैसे तू रोगीकी नाड़ी देखता है, वैसे ही अपनी नब्ज भी देखा कर कि तुझमें कोई रोग तो नहीं है? यदि तू ज्योतिषी है, तो दूसरोंके ग्रह देखनेसे पहले अपने नवग्रह भी देख लिया कर कि तुझपर किसी ग्रहका कोप तो नहीं है। अपने ग्रहोंकी शान्ति करके औरोंके ग्रहोंकी शान्तिका प्रयत्न किया कर। फिर तेरे सूर्यको कभी ग्रहण नहीं लगेगा! यदि तू कथा बांचता है, तो दन्तकथा छोड़कर अनन्त कथा ही सर्वदा बांच, फिर अनन्त भगवान् तेरे दुःखोंका अन्त कर देंगे! यदि तू न्यायाधीश है, तो दूधका दूध और पानीका पानी कर दिया कर, तुझे अश्वमेधका फल मिलेगा! यदि तू नेता है, तो पांच पञ्चोंकी सम्मति लेकर राजा-प्रजाका हित चाहा कर, 'जहां पञ्च वहीं परमेश्वर' तेरी अकेली बुद्धि यथार्थ निर्णय नहीं कर सकती! यदि तू लेखक या उपदेशक है, तो ऐसी ही बात लेखनी या वाणीसे निकाला कर कि जिससे सबका हित हो, किसीका अहित न हो, यदि तेरी वाणीसे किसीका अहित हो गया, तो याद रखना, तू रसातलको चला जायगा। चाहे तू देहात्मवादी हो, चाहे ब्रह्मात्मवादी, नचिकेताके गुरु यमराज किसीका मुलाहिजा करनेवाले नहीं हैं! ज्ञानीको विधि न भी सही, निषेध तो है ही। इसमें दध्यङ् ऋषिका वचन प्रमाण है! जो दूसरेके अहितकी वाणी कहे, वह ब्रह्मज्ञानी नहीं है, यह वेदवेत्ताओंका मत है। जो कायासे, वाचासे और मनसे परहितैषी है, वही तत्त्वदर्शी है! यदि तू सम्पादक है तो तेरी जिम्मेवारी लेखकसे भी अधिक है क्योंकि लेखकोंपर तेरा अधिकार है। यदि तू पर-चूनी, पसारी या हलवाई है, तो रसमें विष मत मिलाया कर, खोटा-खरा एक मत कर दिया कर, फिर तुझे तेरा आत्मा तेरे मनसे भिन्न भासने लगेगा! सौदागरके लिये भी यही नियम है। यदि तू जौहरी है, तो तेरे शरीरमें कौनसा रत्न अमूल्य है, उसकी भी परख किया कर! यदि तू सराफ है, तो जैसे सोनेको कसौटी लगाकर पहचान लेता है, इसी प्रकार मनको भी कसौटी लगाकर देखा कर कि कहीं खोटा तो नहीं होता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाता है! यदि तू सुनार है, तो खरे सोनेको खोटा मत किया कर, ऐसा करनेसे सोना तो खरा ही रहेगा, तू ही खोटा हो जायगा! यदि लोहार है, तो जैसे लोहेको पीटकर चमकदार कर देता है, इसी प्रकार मनको चमकदार बना! यदि बढ़ई है, तो काठके समान मनको भी एकसार कर! यदि दर्जी है, तो कपड़ेका ही कतरब्योंत किया कर, मनमें कतरब्योंत मत किया कर! यदि तू कहार है, तो बर्तनोंके समान अपने मनको भी मांजा कर; यदि तू नाई है, तो जैसे औरोंको मशाल दिखाता है, ऐसे ही अपनेको भी दिखाया कर; जैसे औरों-का श्रृङ्गार करता है, उसी प्रकार अपना सुधार भी किया कर! यदि कुम्हार है, तो खिलौने बनाता हुआ भी मिट्टीको मत भूल, चक्र घुमाता हुआ भी कीलीपर दृष्टि रक्खा कर। यदि तू माली है, तो उस फूलको पहचान, जो कभी मुरझाता ही न हो! यदि तू जुलाहा है, तो कपड़ेमें तानाबाना लगाया कर और मनका तानाबाना खोला कर! यदि तू धोबी है, तो जैसे औरोंके कपड़ोंका मैल निकालता है, इसी प्रकार अपने मनका मैल भी धोया कर! यदि तू चमार है, तो मनकी गाँठें खोल-कर जूतेमें मजबूत टाँके लगाया कर!

विराट् भगवान्‌की भट्ठी

भाई! यदि तू भंगी है, तब तो तू मेरा मुख्य संगी है, तेरी मेरी समानता है, जिन विष्णु भगवान्‌के चरणोंमेंसे तेरा निकास है, उन्हीं विष्णु भगवान्‌के चरणोंका मैं सेवक हूं! परमपावनी श्रीगंगाजी भी वहींसे निकली हैं, जो नाता मेरा गंगाजीसे है, वही नाता तुझसे भी है! जैसे मैं अपने मनका मैल धोता हूं, इसी प्रकार तू पृथ्वी-भरका मैल धोता है, यह मुझसे तुझमें विशेषता है! जैसे मैं अपने मनको बुहारता हूं, इसी प्रकार तू पृथ्वीभरको बुहारता है, यह भी तुझमें विशेषता है। जैसे मैं टुकड़े मांगता हूं, इसी प्रकार तू भी मांगता है। मैं मुफ्तमें ले आता हूं, तू कमाई करके लाता है, यह भी तुझमें विशेषता है! मेरा तेरा पेशा एक है, मैंने यह पेशा नया लिया है, तेरा पेशा अनादि है, यह भी तुझमें विशेषता है! तू भी तीनों वर्णोंसे अलग रहता है, मैं भी सबसे दूर रहता हूं! तू भी चूल्हा नहीं जलाता, मैं भी नहीं जलाता! तीनों वर्ण अग्निहोत्री हैं, तू और मैं अग्नि नहीं रखते! न तू हवन करता है, न मैं करता हूं! नहीं! नहीं! क्यों नहीं करते? हम भी हवन करते हैं! कोई हवनकुण्डमें, कोई चूल्हेमें, कोई अंगीठीमें और कोई मिट्टीकी भट्टीमें हवन करता होगा, तू और मैं दोनों विराट् भगवान्‌की भट्टीमें हवन करते हैं, तुझमें मुझमें यह सबसे विशेषता है। सब पेट-पूजा करते हैं, तू और मैं दोनों हिरण्यगर्भ भगवान्‌की पूजा करते हैं! वाराह भगवान् तेरे घरपर रहते हैं, मेरे दिलमें निवास करते हैं! कहां तक कहूं, तूने कोई पातक ही नहीं किया, इसलिये न तुझे संस्कारकी जरूरत है, न अनुष्ठान-की आवश्यकता है, न कोई प्रायश्चित्त तुझे करना है, न जप, तप, दानादिकी अपेक्षा है! शिरके छिद्रोंमेंसे लार, नाक आदि मैल निकलते हैं, इस-लिये शिर अपवित्र है, तभी शिरके सम्बन्धी ब्राह्मण-के लिये शम, दम, विवेक, वैराग्य, मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन शास्त्रने बताये हैं। हाथ सर्वदा लेनेके लिये लपका करता है, अनेक हिंसाएं करता है, इसलिये हाथके सम्बन्धी क्षत्रियको अश्वमेधादि यज्ञ और प्रायश्चित्त करनेके लिये शास्त्र आज्ञा देता है। पेटमें अनेक विकार भरे हुए हैं, इसलिये पेटके सम्बन्धी वैश्यको दान-धर्म करना चाहिये। पैरोंमें कोई विकार ही नहीं है, विष्णु देवताका स्थान है. स्वभावसे पावन है, इसलिये पैरोंके सम्बन्धी तेरा कोई कर्तव्य नहीं है। न तुझे वेदके अध्ययनकी जरूरत है, न शास्त्रोंके अवलोकनकी आवश्यकता है, तेरा जो स्वाभाविक धर्म है, उसी तेरे धर्मका आचरण करनेको तुझे शास्त्र शासन करता है, फिर मैं तुझे तेरा क्या कर्तव्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बताऊँ ? अपने स्वधर्मपर दृढ़ रह, इतना ही मेरा कहना है, यदि तू अपने धर्मपर आरूढ़ है, तो मेरा बड़ा भाई है, यदि तूने ऊपरकी सफाई देखकर अपनी वृत्तिको बदला, तो सचमुच भंगी हो जायगा क्योंकि तीनों शरीर ही भंगी हैं, जिनको शरीराभिमान है, वे भंगी न होते हुए भी भंगी ही हैं। शूद्रके लक्षण शरीरमें ही घटते हैं, शोकसे गीला होनेवालेको अथवा शोकके बहानेवालेको शूद्र कहते हैं। अन्वय-व्यतिरेकसे शरीर ही शोकसे भीगनेवाला और शोकका बहानेवाला है अर्थात् शरीर है तो शोक है, शरीर नहीं है तो शोक भी नहीं है। आत्मा तो स्वरूपसे शोक-मोहसे रहित आनन्दस्वरूप शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है। उसमें शूद्रका लक्षण नहीं घटता। इसलिये तू शूद्र नहीं है, जो लोग आनन्दस्वरूप आत्माको नहीं जानते, वे ही शूद्र हैं। आत्मा और शरीरका भेद न जानकर जो तुझसे घृणा करते हैं अथवा जो तुझे शरीरसहित शुद्ध करके अपनेमें मिलाना चाहते हैं, उनकी आंखें खोलनेके लिये तेरा स्वरूप और तेरा कर्त्तव्य मैंने तुझे बताया है ! नहीं तो तू पातकरहित है, पातकरहितका कोई कर्त्तव्य ही नहीं है ! यदि तू विद्यार्थी है, तो गुरु, शब्द और ज्ञान तीनोंका भेद समझकर तीनों संयम किया कर, गुरुकी सेवा और शब्दब्रह्मकी उपासना किया कर ! यदि तू गृहस्थ है, तो धर्मपूर्वक धन-जनकी वृद्धि किया कर। दान,धर्ममें रत हो ! यदि तू तपस्वी है,तो मनको सुईकी नोकमेंसे निकाल, शरीरको मत जला ! यदि संन्यासी है, तो खण्ड ब्रह्माण्डके मिथ्या अभिमानको त्याग दे ! यदि तू स्त्री है, तब तो मुझे तुझको सिखानेका अधिकार ही नहीं है। हे देवी ! तुझसे ही तो मैंने सब कुछ सीखा है, फिर तुझे क्या सिखाऊं ? फिर भी यदि तेरा आग्रह है तो इतना ही कहना है कि स्त्री स्त्री नहीं है, वास्तवमें अज्ञानी जीव ही स्त्री है, इसी बातको हमारे मित्र डोरूशंकरकी देवी गार्गीकी जिह्वापर बैठकर ऊंचा हाथ करके याज्ञवल्क्यसहित पाञ्चालादि देशोंके ब्राह्मणोंके सम्मुख जनकराज विदेहकी सभामें सिद्ध करेगी !

पाठक ! आप समझ गये होंगे कि उपर्युक्त संवाद किनका है । न समझे हों, तो सुनिये, असलमें तो यह संवाद श्रुति भगवती और मुमुक्षुका है, इसीको श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्ने अर्जुनको संग्राममें सुनाया है। प्रथम तो भगवान्ने 'क्लैब्यं मास्म गमः' इत्यादि सर्वश्रेष्ठ श्लोकसे अर्जुनको कोड़ा लगाया है, जो खा लेता है भगवान्का कोड़ा, उसकी गाड़ीमें कोई नहीं अटकाता रोड़ा ! जो कायर कोड़ा खानेसे डरता है वह सिसक सिसककर मरता है ! आगे जाकर भगवान्ने कर्म-अकर्मका स्वरूप समझाया है और स्वधर्मानुष्ठानको अपनी भक्ति बताया है, इस आगन्तुक धर्मका अनुष्ठान करनेसे वास्तविक स्वधर्म जो भगवान्का स्वरूप है, उसका पता चलता है। भगवान्के स्वरूपको जानकर भक्त भगवान्के शरण होता है और सर्व धर्मोंसे रहित भगवान्को ही प्राप्त होता है। जो भगवान्का उपदेश है, उसीको भाटके समान गा-गाकर हमने आपके कानोंतक पहुंचा दिया है ! मानना न मानना आपका काम है, कह देना हमारा धर्म है ! न माना तो दूर न होगा भय, मान लिया तो आप हो जायंगे अभय, सन्मय, चिन्मय और आनन्दमय ! बोलो, व्यास भगवान्की जय ! शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कल्याणके नियम

१–भक्ति ज्ञान और सदाचार-समन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुंचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

२–यह प्रतिमासकी कृष्णा एकादशीको प्रकाशित होता है।

३–इसका अग्रिम वार्षिक मूल्य डाकव्ययसहित भारतवर्षमें ४॥) और भारतवर्षसे बाहरके लिये ६) नियत है। एक संख्याका मूल्य ।=) है। बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए, पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता।

४–ग्राहकोंको मनिआर्डरद्वारा चन्दा भेजना चाहिये, नहीं तो वी. पी. खर्च उनके जिम्मे और पड़ जायगा।

५–इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें स्वीकार कर प्रकाशित नहीं किये जाते।

६–ग्राहकोंको अपना नाम, पता स्पष्ट लिखनेके साथ साथ ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

७–पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड अथवा टिकट भेजना आवश्यक है।

८–भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना मांगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं है।

९–कार्यालयसे 'कल्याण' दो तीन बार जांच करके प्रत्येक ग्राहकके नाम भेजा जाता है। यदि किसी मासका 'कल्याण' ठीक समयपर न पहुंचे तो अपने डाकघरसे लिखापढ़ी करनी चाहिये। वहांसे जो उत्तर मिले, वह अगला अङ्क निकलनेके कमसे कम सात दिन पहलेतक कल्याण-कार्यालयमें पहुंच जाना चाहिये। देर होनेसे या डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेपर दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें बड़ी अड़चन होगी!

१०–प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनिआर्डर आदि 'व्यवस्थापक-कल्याण, गोरखपुर' के नामसे भेजना चाहिये और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि 'सम्पादक कल्याण, गोरखपुर' के नामसे भेजना चाहिये।

गीताप्रेसमें निम्नलिखित पुस्तकें भी मिलती हैं–

१–भगवन्नामकौमुदी–(संस्कृत) बहुत प्राचीन ग्रन्थ संस्कृत-टीकासहित ... ॥=)

२–भक्तिरसायन–(संस्कृत) श्रीमधुसूदनजी सरस्वती रचित संस्कृत-टीकासहित ... ॥।)

३–खण्डनखण्डखाद्यम् (हिन्दी अनुवादसहित) सजिल्द, श्रीहर्षकृत वेदान्तका अपूर्व ग्रन्थ २॥।)

डाक महसूल सबमें अलग लगेगा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Registered No. A. 1724.

गीताप्रेस गोरखपुरमें मिलनेवाली पुस्तकें--

१-श्रीमद्भगवद्गीता-मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारणभाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्मविषय-सहित, मोटाटाइप, मजबूत कागज, सुन्दर कपड़ेकी जिल्द ५७० पृष्ठ ... १।)
२- ,, मोटा कागज, बढ़िया जिल्द ... ... २)
३-श्रीमद्भगवद्गीता-प्रायः सभी विषय १।)वालेके समान, एक विशेषता श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ, साइज और टाइप कुछ छोटे पृष्ठ ४६८ मूल्य ॥=) सजिल्द ॥।=)
४-गीता-साधारणभाषाटीकासहित, सचित्र ३५२ पृष्ठ =)॥ सजिल्द ... ≡)॥
५-गीता-केवलभाषा, मोटाटाइप, सचित्र मूल्य ।) सजिल्द ... ... ।=)
६-गीता-मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र मूल्य ।-) सजिल्द ... ... ।≡)
७-गीता-मूल, तावीजी साइज, सजिल्द ... ... =)
८-गीता-मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, सचित्र और सजिल्द ... ... =)
९-गीता-का सूक्ष्म विषय पाकेटसाइज ... -)॥
१०-गीताडायरी सन् १९३० बिना जिल्द ।) सजिल्द ... ... ।-)

११-पत्रपुष्प-भावमय सचित्र भजनोंकी पुस्तक ≡)॥
१२-स्त्रीधर्मप्रश्नोत्तरी (नये संस्करणमें १० पृष्ठ बढ़े हैं) =)
१३-सच्चासुख और उसकी प्राप्तिके उपाय -)॥
१४-गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग -)॥
१५-मनुस्मृति द्वितीय अध्याय अर्थ सहित -)॥
१६-मनको वशमें करनेके उपाय, सचित्र -)।
१७-प्रेमभक्तिप्रकाश, दो रंगीन चित्र -)
१८-त्यागसे भगवत्प्राप्ति सचित्र -)
१९-ब्रह्मचर्य -)
२०-भगवान् क्या हैं ? -)
२१-समाज-सुधार -)
२२-हरेरामभजन)॥।
२३-विष्णुसहस्रनाम मूल, मोटा टाइप)॥।
२४-सीतारामभजन)॥
२५-प्रश्नोत्तरी श्रीशङ्कराचार्यजीकृत भाषा सहित)॥
२६-सन्ध्या (विधिसहित))॥
२७-बलिवैश्वदेव-विधि)॥
२८-पातञ्जलयोगदर्शन मूल)।
२९-धर्म क्या है ?)।
३०-दिव्यसन्देश)।
३१-श्रीहरि-संकीर्तन-धुन)।
३२-गीता द्वितीय अध्याय अर्थसहित)।
३३-लोभमें ही पाप है आधापैसा
३४-गजलगीता आधापैसा
३५-भगवन्नामाङ्क, चित्र ४१ पृष्ठ ११० १।)
३६-तत्त्वचिन्तामणि सचित्र ॥।-) सजिल्द १)
३७-मानवधर्म ≡)
३८-भजन-संग्रह पहिला भाग =)
३९-श्रीप्रेम-श्रुतिप्रकाश (श्रुति-संग्रह) मूल -)॥
४०-श्रीप्रेम-स्तुतिप्रकाश (स्तुति-संग्रह) मूल -)॥।
४१-प्रेम-योग अजिल्द १।) सजिल्द १॥)
४२-साधनपथ ≡)॥

विशेष सुभीता

एक साथ सिरीज मंगानेवाले ग्राहकोंको डाकमहसूल नहीं देना पड़ेगा—

सि० न० १ पुस्तक न० ४ और न० ८ से लेकर ३४ तक कुल २८ पुस्तकें मूल्य १॥≡) पैकिंग -)-२)में।
सि० न० २ पुस्तक न० ३ से न० १० तक सजिल्द और न० ११ से ३५ तक कुल ३३ पुस्तकें मूल्य ४॥≡) पैकिंग =)-४॥।) में। इस सिरीजमें भगवन्नामांककी कीमत १।) के बदले ॥।) ली गयी है।
सि० न० ३ पुस्तक न० २ मोटी सजिल्द गीता और न० ३ से ३४ तक बिना जिल्दकी कुल ३३ पुस्तकें मूल्य ५।-) पैकिंग चार्ज ≡)-५॥) में।
सि० न० ४ पुस्तक न० ३६ (सजिल्द) से ४० तक कुल ५ पुस्तकें मूल्य १॥)। पैकिंग -)॥।—१॥=) में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri